प यमुनादासजी तथा गोस्वामी [illegible] भी [illegible] ने [illegible]
भी और उस उत्सव में गया था। श्री [illegible] में मैं [illegible]
परन्तु इस प्रश्न को सुनते ही मेरी उत्कण्ठा हुई कि मैं भी इस ति
का अन्वेषण करूं, क्योंकि मैं ज्योतिषी हूं, मेरा आन्तरि[illegible]
था कि पुराण धर्मशास्त्र आदि पढ़ूं और [illegible]
के किनारे भी जाऊं, इसी चिन्ता में निमग्न हो रहा था कि
तत्काल ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का एक दोहा स्मरण आ
गया "नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं गांठी का दाम। मो सो दी
पतंग की, पति राखहु श्रीराम" इसके स्मरण आते ही मेरे मन में बड़ी
शान्ति के साथ एक आशा का संचार हो गया तदनन्तर एक रोज दि
पर पण्डित यमुनादासजी श्रीलालगढ़ में मिले और उनके हाथ में ए
पोन और हस्तलिखित खुले पत्रों की एक पुस्तिका दीख पड़ी मैंने उसके
विषय में पूछा तो उन्होंने कपिलायतनमाहात्म्य उसका नाम बताया और श्री
१०८ अन्नदाताजी ने अमुकामुक प्रश्न किये हैं उन्हीं के उत्तर ढूंढने
के लिये यह पुस्तक लाया हूं, यह उत्तर दिया, तदनन्तर उस पुस्तक
को एक बार आद्योपान्त पढ़ने के लिये मैंने उन से प्रार्थना की और मेरी प्रा-
र्थना स्वीकार करके उन्होंने पुस्तक देदिया पुस्तक पढ़जाने पर इच्छा
हुई कि इस पुस्तक का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करूं जिस में
सर्वसाधारण को श्रीकोलायतजी का विषय पूर्णतया अवगत होजाय और

वाद की समालोचना उन्होंने की और स्थल २ में कुछ रदबदल करने की भी अपनी सम्मति प्रकट की और वैसा ही मैंने कर भी दिया फिर उन्होंने संस्कृत टीका लिखने की भी सम्मति दी तब से जब २ संयोगवश वह मिलते थे तब तब इस का समाचार पूछते और मेरी सुस्ती पर मुझे बहुत लज्जित किया करते थे तो भी इस ग्रन्थ की परिसमाप्ति में बहुत विलम्ब हुआ और मित्रों ने समय २ पर अतिशय भर्त्सना की तो भी मेरे सहचर और बालसखा आलस्यदेव ने कुछ परवाह न कर अपनी ही गति से मुझे चलाता रहा एवं " दिनभर चले अढ़ाई कोश " की कहावत को मैं चरितार्थ करता हुआ इसी विक्रमी सम्वत् १९८१ के श्रावण शुक्ला एकादशी सोमवार के प्रातःकाल में इस पुस्तक की समाप्ति लगभग दो वर्षों में करसका और समाप्त होते ही मेरे परमप्रेमभाजन बन्धुवर श्रीकृष्णदासजी हर्ष ने इसको छपवादेने के लिए प्रेरणा की और उक्त मेरे परमहितैषी श्रीमान् आयुर्वेदभूषण पण्डित जीवनरामजी हर्ष ने अपने श्री केवल जीवनानन्द प्रेस में छपाने की भी अनुमति देदी। मैं उक्त सज्जनों की कृपा पूर्ण सम्मति से प्रेरित एवं समुत्साहित होकर उक्त कार्य का आरंभ वा उसके आद्योपान्त सम्पादन कर सकने में सात्मयान हुआ हूं बस यही मेरा वक्तव्य है।

यह भी आशा करता हूं कि सभी परमोदार सज्जन इसी प्रकार अपनी महत्वपूर्ण सात्विकवृत्ति से मेरी इस तुच्छ भेंट को धार्मिक एवं विद्याप्रेम के नाते अपनाकर कृतार्थ करेंगे। किमधिकं विज्ञेषु।

बीकानेर,
सं० १९८१ कार्तिक शुक्ला ११

विष्णुदत्तः।

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
म [illegible]
[illegible]
म [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

# शुद्धाऽशुद्धपङ्क्तयः।



| अशुद्धयः | शुद्धयः | पृष्ठ | पंक्ति |
| --- | --- | --- | --- |
| महात्म्य | माहात्म्य | १ | १३ |
| समोमतम | समोत्तमम | १ | १८ |
| किंचिदद्वोप्यम् | किंचिद्द्वोप्यम् | ४ | ५ |
| श्लोका | श्लोकाः | ४ | ३ |
| वशिष्ट | वसिष्ठ | ७ | ७ |
| .. | .. | .. | १० |
| यद्गु.म | यद्गु णं | २० | १७ |
| आ | आ | २१ | ५ |
| साहचं | साहसः | २२ | ४ |
| म | म | .. | ७ |
| धुं | धो | .. | १२ |
| क | [illegible] | २४ | १६ |
| [illegible] | [illegible] | ५८ | ३ |
| [illegible] | [illegible] | ६१ | ३ |
| [illegible] | [illegible] | ६१ | १६ |
| [illegible] | [illegible] | ६२ | ४ |
| [illegible] | [illegible] | .. | २४ |
| [illegible] | [illegible] | ७० | १० |
| [illegible] | [illegible] | ७२ | १३ |
| [illegible] | [illegible] | .. | १५ |
| [illegible] | [illegible] | ७३ | १६ |

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवाखण्डीय

# कपिलायतनतीर्थमाहात्म्यं

लिख्यते



॥ तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

**महेशानं महेशानतनुजं मनुजार्चितम् ।**
**नमामि विघ्नहर्तारं कर्तारं सर्वसम्पदाम् ॥ १ ॥**

श्रीकपिलायतनमाहात्म्यरचयिता पुराणकर्ता व्यासदेव प्रथम गणेशं स्तौति महेशानमिति-

महेशानतनुजं महेशानस्य शङ्करस्य तनुजं महादेवात्मजं मनुजार्चितं मनुजैरर्चितं पूजितं विघ्नहर्तारं विघ्नविनाशनं सर्वसम्पदां कर्तारं महेशानं गणेशं नमामि नमस्करोमि ॥ १ ॥

श्री कपिलायतन महात्म्य के रचयिता पुराणकर्ता व्यासदेव " प्रथम गणेशजी की स्तुति करते हैं "-

महेशान शंकरजी के पुत्र, मनुष्यों से पूजित, विघ्नों के हर्ता और सर्वसम्पत्तियों के कर्ता महेशान गणेशजी को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

( सूत उवाच )

**गंगा माहात्म्य मधुरं स्वर्गापवर्गमोक्षदम् ।**
**श्रुत्वा प्रहर्षमगमच्छौनकोमुनिसत्तमः ॥ २ ॥**

[illegible] मुनिसत्तमः [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि मुनियों में श्रे अगस्त्यमुनि पूर्वकथा में अनुपम और सब तीर्थों से उत्तमोत्तम गं माहात्म्य को स्कन्ददेव से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

**पुनः पप्रच्छ विनयात्तनयं प्रणयान्वितः ।**
**शूलिनस्सर्वतत्वज्ञं स्कन्दं देवारिकंदनम् ॥ ३ ॥**

प्रणयान्वितोविनयान्नम्रीभूतोऽगस्त्य स्सर्व्वतत्वज्ञं सर्वतत्ववेत्ता देवारिकन्दनं शूलिनश्शंकरस्य तनयं स्कन्दाम्विनयात्पुनः पप्रच्छ पृष्टवान्॥

अगस्तजी ने विनीत भाव के साथ नम्र होकर सर्व तत्व के जाननेवाले तथा देवारिक्रन्दन ( तारकासुर के बध करनेवाले ) शंकरजी के पुत्र स्कन्ददेव से पुनः प्रश्न किया ॥ ३ ॥

**भगवन्सर्वधर्म्मज्ञ ! सर्वज्ञसुत ! मत्प्रभो ! ।**
**गंगामाहात्म्यकथनात्पावितोहं न संशयः ॥ ४ ॥**

अस्मिन्पद्ये पूर्वार्द्धस्य पदचतुष्टयं स्कन्दस्य सम्बोधनमेव भगवन्नित्यादितोमत्प्रभो ! पर्य्यन्तम् उत्तरार्द्धेनागस्त्यः किंचित्स्ववृत्तं कथयति यत्तव गंगामाहत्म्यकथनादहं पावितः पवित्रीकृतो स्मिनसंशयः ॥ ४ ॥

अगस्त्यजी ने कहा कि हे भगवन् ! हे सब धर्म के जानने वाले ! हे शंकरजी के पुत्र ! और मेरे प्रभु ! आपके गंगा माहात्म्य के कथन से मैं पवित्र होगया इस में सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥

**गंगा तु सर्वलोकेषु वेदेषुच महामते ! ॥**
**प्रसिद्धिमागता नित्यं सर्व्वे जानन्ति सत्तमाः ॥ ५ ॥**

हे महामते ! गंगा तु सर्व लोकेषु वेदेषु वेदचतुष्टयेषुच प्रसिद्धि र्प्रख्यातिमागतेतिसर्वे सत्तमा निपुणा नित्यं निरन्तरंजानन्ति ॥ ५ ॥

( १ ) देवारिस्तारकासुरस्तस्कन्दएव देवसैन्याधिपतिर्भूत्वाऽवधीत् पुराणे विस्तरेणोक्ता ॥

हे महामते ! गंगा तो सब लोकों में और वेदों में प्रसिद्ध हो चुकी है यह सभी सत्पुरुष जानते हैं ॥ ५ ॥

**आस्त्री पालकगोपालंगंगामाहात्म्यमुत्तमम् ॥**
**प्रकटं सुरसेनानीर्जानाति भुवनत्रये ॥ ६ ॥**

हे सुरसेनानीः ! आस्त्रीबालकगोपालं स्त्रियमारभ्यबालक गोपालपर्य्यन्तम् । उत्तमंगंगामाहात्म्यं भुवनत्रयेप्रकटं मन्यत्सं जानाति स्त्रियोबालका गोपालाश्च सर्वे जानन्तीतिभावः अत्र गोपालशब्दस्तु, आभीर याचकः ग्वालाइति भाषायां । आभीरस्तु शूद्रवर्णोभवति अत एतेऽपि जानन्ति किमन्येषामिति ॥ ६ ॥

हे स्कन्ददेव ! इस त्रिभुवन में स्त्री, बालक तथा गोपाल पर्य्यन्त, सभी इस उत्तम गंगा माहात्म्य को प्रत्यक्षरूप से जानते हैं। यद्यपि इस बात को सभी जानते हैं कि शास्त्रों में स्त्रियों को, बालकों को, और शूद्रों को किसी तीर्थ या नदी के माहात्म्य जानने का अधिकार नहीं है, तथापि इस कथन से गंगा माहात्म्य की प्रधानता विशेषरूप से सूचित हो रही है ॥ ६ ॥

**अनन्तपदपाम्भोजमधुमाया भवच्छिदः ॥**
**रिङ्गत्तुङ्गतरंगायाः श्रीकपर्दे कपर्दिनः ॥ ७ ॥**

**महापापौघविध्वंसदर्पितायाः षडानन ॥**
**कोऽन जानाति गंगाया माहात्म्यम्परमाद्भुतम् ॥ ८ ॥**

हे षडानन ! कपर्दिशरसंचारण श्रीकपर्दे [illegible] [illegible] गुरुतरतरंग [illegible]. [illegible] [illegible] महापापौघविध्वंसदर्पिताया: [illegible] [illegible] माहात्म्य को न जानते हैं ॥ ७, ८ ॥

हे स्कन्द! [illegible] के [illegible] करने के [illegible] के [illegible], [illegible] के [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] में [illegible] हुई [illegible] के [illegible] का अन्त नहीं [illegible] है ॥ ७. ८ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि किञ्चिद्गोप्यं मनोगतम् ॥
सर्वलोकहितं देव! ममापि परमाद्भुतम् ॥ ९ ॥

हे देव! अधुना सर्वलोकहितम् ममापि परमाद्भुतम्परमाश्चर्यकरं मनोगतं किञ्चिद्गोप्यं श्रोतु मिच्छामि ॥ ९ ॥

हे देव! इस समय सर्वलोकहितकारी और मेरे लिये परम आश्चर्यकारी कोई मनोगत गुप्त कथा हो तो कहिये. वही सुनने की इच्छा होती है ॥ ९ ॥

किन्तु तीर्थं मयेदत्र सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
जनैरसमर्थैरविज्ञातं स्याद्दैशान्तमेवहि ॥ १० ॥
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥
सर्वत्र सुखदं देव! भोगिभोगप्रदं शुचि ॥ ११ ॥
सकामानान्तथान्नृणां कामनापरिपूरकम् ॥
निष्कामानाम्पुनर्विद्वन्! ज्ञान मुत्पाद्य मुक्तिदम् ॥ १२ ॥
स्वर्गदं दुष्टबुद्धीनां पापिनां पापनाशनम् ॥
सदः प्रत्ययकृल्लोके मर्त्यानां स्थूल चक्षुषाम् ॥ १३ ॥
प्रेतयोनिगमानां यन्मुक्तिदं भवसागरे ॥
दिव्य लोक प्रदं दिव्यं दिव्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १४ ॥
दिव्यदेवाधिपैर्गम्यं मर्त्यानां तीर्थवंगम ॥
यथा कथाऽपि निम्नगा मोक्षदं शोकनाशकम् ॥ १५ ॥

**तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात्सुरसत्तम ॥**
**नाज्ञातं विद्यते किञ्चित्सर्वज्ञाननिधेस्तव ॥ १६ ॥**

( सरलार्था इमे श्लोकाः )

हे देव ! हे विद्वन् ! हे सुरसत्तम ! इस संसार में ऐसा कोई तीर्थ हो जो सब तीर्थों का फल देनेवाला हो, मनुष्यों से अज्ञात हो, आप सदृश महात्मा ही उसको जानते हों, वह सब पापों का हारक तथा पवित्र और सब यज्ञों का फल देनेवाला हो, सकाम सेवन करनेवाले मनुष्यों की कामनाओं को परिपूर्ण करता हो, और निष्काम सेवन करनेवालों को ज्ञान देकर मुक्त करता हो, सुबुद्धियों को स्वर्ग देता हो, पापियों के पाप नाश करता हो, और स्थूल दृष्टि से देखनेवाले मनुष्यों को इस लोक में तत्काल परिचय देनेवाला हो तथा प्रेतयोनि में गये मनुष्य को भी भवसागर से मुक्त करनेवाला एवं दिव्य लोक देनेवाला, दिव्य महात्म्य से युक्त, और दिव्य देवताओं से सेवित हो और सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ हो एवं जिस किसी क्रिया से भी संसार बन्धन का मोचक और शोकनाशक हो उस तीर्थ को आपके मुख से सुनना चाहता हूं। आप सम्पूर्ण ज्ञान के निधि हैं आप से कोई वस्तु अज्ञात नहीं है ॥ १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥

**यद्यस्ति मयि ते पूर्णा करुणा करुणानिधे !, ॥**
**प्रब्रूहि प्रविणाशाय, महासेन ! महैनसाम् ॥ १७ ॥**

हे ! करुणानिधे ! महासेन ! यदि, ते तव, मयि विषये, पूर्णा करुणास्ति, तदा महैनसां महापापानां प्रविणाशाय, प्रब्रूहि, कथय, गंगामाहात्म्यमिति, पूर्वश्लोकात्संबन्धः ॥ १७ ॥

हे करुणानिधि ! महासेन ! यदि आपकी मेरे ऊपर पूर्ण करुणा है तो महापापों के विनाश के हेतु गंगामाहात्म्य को कहिये ॥ १७॥

( सूत उवाच )

**इति प्रश्नेन संहृष्टः पार्वतीनन्दनस्तदा ॥**
**उवाच वचनं चारु महस्य श्रूयतामिति ॥ १८ ॥**

सूतः शौनकादीन्कथयति यदेवमगस्त्योदितप्रश्नेन स हृष्टः प्रसन्नताम्प्राप्तः पार्वतीनन्दनस्तदातस्मिन्कालेमहस्य विहस्य श्रूयतामिति चारु वचनमुवाच ॥ १८ ॥

सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा, कि इस तरह अगस्तजी के प्रश्न को सुन पार्वतीनन्दन स्कन्दजी प्रसन्न हुवे और श्रूयताम् ( सुनो ) इस रुचिर वचन को बोले ॥ १८ ॥

**मुने ! जगद्धितं पृष्टं तदिहैकमना भव ॥**
**वक्ष्याम्यहं तव प्रीत्यानान्यथातत्कथंचन ॥ १९ ॥**

हे मुने ! त्वया जगद्धितं पृष्टं तत्तस्मात्कारणादिहैकमना एकाग्रचित्तोभव, तव प्रीत्यायदहं वक्ष्यामि तत्कंथचनान्यथानेति ॥ १९ ॥

हे मुनि ! तुम सावधान होकर सुनो तुमने जो संसार के हित कामना से प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे प्रेम के कारण जो कहूंगा वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

**गोप्यं यन्न प्रकाश्यन्तदिति वेदविदाम्मतम् ॥**
**तथापि वच्मि ललितं तव शीलाद्वशंवद ॥ २० ॥**

हे वशम्वद ! प्रिय वादिन् ! यद्गोप्यं गोपनीयम्वस्तु तन्न प्रकाश्य-मिति वेदविदाम्मतमस्ति तथापि तव शीलात् ललितं सुन्दरं यथास्यात्तथाहं वच्मि कथयामि ॥ २० ॥

हे वशंवद! जो गोप्य वस्तु है उसको कभी प्रकाश नहीं करना चाहिये यह वेद जाननेवालों का सम्प्रदाय है. तौ भी तुम्हारे सौजन्यवश सुन्दरता से उस गुप्त कथा को कहता हूं ॥ २० ॥

**संभवेदिहसंप्रीतिर्वक्तुः श्रोतरिसत्तमे ॥**
**यरुन्धतीधवस्येव जानकीपतिभूपतौ ॥ २१ ॥**

इहास्मिन् गुप्तकथासंभाषणे जानकीपतिभूपतौ श्रीरामचन्द्रे, अरुन्धतीधवस्यवशिष्ठस्य इव श्रोतरि सत्तमे वक्तुस्संप्रीतिः संभवेत् आकांक्षितास्ति ॥ २१ ॥

इस गुप्त कथा के संभाषण में श्रोता और वक्ता का प्रेम वैसाही होना चाहिये जैसा राजा श्रीरामचन्द्रजी में वशिष्ठजी का था ॥ २१ ॥

**इयं भागवतीसृष्टिर्यस्याः पारोनाविद्यते ॥**
**यत्र कुत्राऽपि वहुधा तत्तद्रत्नधरा धरा ॥ २२ ॥**

इयं भागवती सृष्टिः यस्याः पारः अन्तं न विद्यते, यस्यां सृष्टौ धरा पृथ्वी यत्रकुत्राऽपि तत्तद्वक्ष्यमाणरत्नधरास्ति यानि तानि रत्नानि धरतीति तत्तद्रत्नधरेति, ॥ २२ ॥

यह वैष्णवी सृष्टि है जिसका अन्त नहीं है इस सृष्टि में पृथ्वी जहां तहां जिन जिन रत्नों को धारण करती है उनके नाम आगे कहे गये है ॥ २२ ॥

**कुत्रापि नारीरत्नानि नररत्नानि कुत्रचित् ॥**
**कुत्रचिद्वाजिरत्नानि गजरत्नानि कुत्रचित् ॥ २३ ॥**

पृथिव्यां कुत्रापि नारीरत्नानि नररत्नानि सन्ति कुत्रापि नररत्नानि सन्ति कुत्रचिद्वाजिरत्नानि गजरत्नानि सन्ति कुत्रचिद्गजरत्नानि सन्ति ॥ २३ ॥

हे करुणानिधि! महामुन! यदि आपकी मेरे ...
है तो महापापों के विनाश के हेतु गंगामाहात्म्य को ...

(सूत उवाच)

इति प्रश्नेन संहृष्टः पार्वतीनन्दनस्...
उवाच वचनं चारु महस्य शृणुतामि...

सूतः शौनकादीन्कथयति मदेवमगस्त्यादिनप्रश्न...
प्रसन्नताम्मासः पार्वतीनन्दनस्तदातस्मिन्कालेमहस्य विहस्य...
चारु वचनमुवाच ॥ १८ ॥

सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा, कि ...
अगस्तजी के प्रश्न को सुन पार्वतीनन्दन स्कन्दजी प्रसन्...
शृयताम् (सुनो) इस रुचिर वचन को बोले ॥ १८ ॥

मुने! जगद्धितं पृष्टं तद्विहैकमना भव॥
वक्ष्याम्यहं तव प्रीत्यानान्यथातत्कथंचन

हे मुने! त्वया जगद्धितं पृष्टं तत्तस्मात्कारण...
एकाग्रचित्तोभव, तव प्रीत्यायदहं वक्ष्यामि तत्कंथमपनान्यथेति

हे मुनि! तुम सावधान होकर सुनो तुमने जो संसार...
कामना से प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे प्रेम के ...
कहूंगा वह कभी ... १९ ॥

गोप्यं ...

... ॥

... ॥ २०

... गोपनीयम्वस्तु तत्र प्र...

**लोके प्रकाशो बहुलो यत्र सृष्टिः प्रवर्त्तिता ॥**
**तत्रापि महतीभूमिर्महास्वर्णमयी स्थिता ॥ २७ ॥**

लोके यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता यावन्मात्रं सृष्टिर्वर्तते । तत्र सूर्य्याचन्द्रमसोनिरन्तरगमनेन बहुलः प्रकाशोऽस्ति तत्रापि प्रकाशभूमावपि महती भूमिर्महास्वर्णमयी स्थिताऽस्ति ॥ २७ ॥

संसार में जहांतक सृष्टि है वहां तक पूर्ण प्रकाश है उसमें भी अधिकतम भूमि भाग अनेक रत्नों से भरा है, जिसको महास्वर्णमयी भूमि कहते है ॥ २७ ॥

**तत्र मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती मही ॥**
**तेषु द्वीपेषुच महान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते ॥ २८ ॥**

तत्र तस्यां महास्वर्णमय्यां भूमौ मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती सप्तद्वीपाधिष्ठाना मह्यस्ति तेषु द्वीपेषु सुमहान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते सप्तसुद्वीपेषु जम्बूद्वीपो विशिष्ट इति ॥ २८ ॥

उस स्वर्णमयी भूमि के मध्यप्रदेशों में द्वीपात्मक सात विभागों से पृथ्वी विभक्त है, उन विभागों में सब से प्रधान और बृहदाकार जम्बूद्वीप है ॥ २८ ॥

**तद्द्वीपे नवखण्डानि भारतादीनि सत्तम ॥**
**भारतं पुण्यमेतेषु कर्मक्षेत्रं यतस्स्मृतम् ॥ २९ ॥**

हे सत्तम ! तज्जम्बूद्वीपे भारतादीनि नव खण्डानि वर्तन्ते एतेषु नवसु खण्डेषु भारतं यतः पुण्यविशिष्टम् अतः कर्मक्षेत्रं स्मृतम् कथितम् ॥ २९ ॥

हे मुनि सत्तम ! इस जम्बूद्वीप में भी भारतादि नवखंड है उन नवों खण्डों में भारत सब से पवित्र है इसलिये कर्मक्षेत्र कहा गया है ॥ २९ ॥

पृथ्वी में कहीं स्त्री रत्न हैं, कहीं पुरुष रत्न हैं, कहीं अश्व रत्न हैं और कहीं गज रत्न हैं ॥ २३ ॥

धरायाम्बहुरत्नायां तीर्थरत्नानि सन्तिहि ॥
तत्ते हं सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थरत्नं परात्परम् ॥ २४ ॥

बहुरत्नायां धरायां हि यस्मात्तीर्थरत्नानि सन्ति अतः परात्प श्रेष्ठादतिश्रेष्ठं तत्तीर्थरत्नं ते तुभ्यमहंसंप्रवक्ष्यामि ॥ २४ ॥

इस बहुरत्ना पृथ्वी में तीर्थ रत्न भी हैं इस कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तीर्थरत्नों को तुम से कहता हूं ॥ २४ ॥

प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूतानि भूतले ॥
तेष्वपीह परं रत्नं तीर्थमेकं प्रशस्यते ॥ २५ ॥

इह भूतले जगतीतले प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूतानि सन्ति तेषु पि परमुत्कृष्टं रत्नमेकंतीर्थं प्रशस्यते प्रशस्तमस्ति यदग्रेवक्ष्यति ॥ २५ ॥

इस पृथ्वी में प्रयाग आदि तीर्थ तीर्थों में रत्न है उनमें भी म उत्कृष्ट एक तीर्थ रत्न है जो आगे कहेंगे ॥ २५ ॥

श्चाशत्कोटिविस्तारं भूमण्डलमिदंस्मृतम् ॥
त्रापि लोकेविस्तीर्णन्तम एव प्रवर्त्तते ॥ २६ ॥

इह भूमण्डलं पंचाशत्कोटिविस्तारमर्थात्पंचाशत्कोटि योजनायत- त, एतदर्थं श्रीमद्भागवतस्य पञ्चमस्कन्धे भूगोल वर्णनं द्रष्टव्यम् । पि एतावद्विस्तृते लोकेपि विस्तीर्णं अधिकं तम अन्धकार एव र्त्तते ॥ २६ ॥

इस भूमण्डल का पचास कोटि योजन का विस्तार है, उ र के अधिक भाग में अन्धकार ही है पौराणिक भूगोल का द्भागवत के पंचम स्कंध में पूर्ण रीति से व्यासजी ने किया है ॥

**लोके प्रकाशो बहुलो यत्र सृष्टिः प्रवर्त्तिता ॥**
**तत्रापि महतीभूमिर्महास्वर्णमयी स्थिता ॥ २७ ॥**

लोके यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता यावन्मात्रे सृष्टिर्वर्तते । तत्र सूर्य्याचन्द्रमसोनिरन्तरगमनेन बहुलः प्रकाशोऽस्ति तत्रापि प्रकाशभूमावपि महती भूमिर्महास्वर्णमयी स्थिताऽस्ति ॥ २७ ॥

संसार में जहांतक सृष्टि है वहां तक पूर्ण प्रकाश है उसमें भी अधिकतम भूमि भाग अनेक रत्नों से भरा है, जिसको महास्वर्णमयी भूमि कहते हैं ॥ २७ ॥

**तत्र मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती मही ॥**
**तेषु द्वीपेषु महान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते ॥ २८ ॥**

तत्र तस्यां महास्वर्णमय्याम्भूमौ मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती सप्तद्वीपाधिष्ठाना मह्यस्ति तेषु द्वीपेषु सुमहान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते सप्तसुद्वीपेषु जम्बूद्वीपो विशिष्ट इति ॥ २८ ॥

उस स्वर्णमयी भूमि के मध्यप्रदेशों में द्वीपात्मक सात विभागों से पृथ्वी विभक्त है, उन विभागों में सब से प्रधान और वृहदाकार जम्बूद्वीप है ॥ २८ ॥

**तद्द्वीपे नवखण्डानि भारतादीनि सत्तम ॥**
**भारतं पुण्यमेतेषु कर्मक्षेत्रं यतस्स्मृतम् ॥ २९ ॥**

हे सत्तम ! तज्जम्बूद्वीपे भारतादीनि नव खण्डानि वर्त्तन्ते एतेषु नवसु खण्डेषु भारतं यतः पुण्यम्पवित्रमस्ति अतः कर्मक्षेत्रं स्मृतम् कथितम् ॥ २९ ॥

हे मुनि सत्तम ! उस जम्बूद्वीप में भी भारतादि नवखंड है उन नवों खण्डों में भारत सब से पवित्र है इसलिये कर्मक्षेत्र कहा गया है ॥ २९ ॥

**भवन्ति तत्र तीर्थानि नाना पापहराणि वै ॥**
**लोकोपकार सिद्ध्यर्थं विहितानि महात्मभिः ॥ ३**

तत्र कर्मक्षेत्रे लोकोपकारसिद्ध्यर्थं महात्मभि र्विहितानि नाना हराणि तीर्थानि भवन्ति वै अत्र पाद पूरकोऽव्ययः ॥ ३० ॥

उस कर्मक्षेत्र में लोकोपकार के लिये महात्माओं के कहे अनेक पापहारक तीर्थ हैं ॥ ३० ॥

**कानिचिद्गिरिरूपाणि सरोरूपाणि कानिचित् ॥**
**ह्रदप्रस्रवरूपाणि नदीरूपाणि कानिचित् ॥ ३१ ॥**
**वनारण्यस्वरूपाणि पुरीरूपाणि कानिचित् ॥**
**पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि महामुने ॥ ३२ ॥**

हे महामुने ! पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि कानिचित्तीर्थानि गिरिरूपाणि कानिचित्सरोरूपाणि कानिचित्ह्रदप्रस्रवरूपाणि कानिचिन्नदीरूपाणि कानिचिद्वनारण्यस्वरूपाणि पुरीरूपाणि च सन्ति ॥ ३१, ३२ ॥

हे महामुनि ! पुराणों में और स्मृतियों में जिन २ तीर्थों का महात्म्य वर्णन किया गया है उन में कितने तो गिरिपर्वतों के रूप में हैं, कितने सरोवरों के रूप में हैं, कितने झरनों के रूप में हैं, कितने नदी के रूप में हैं, कितने वन तथा अरण्य के रूप में हैं और कितने पुरियों के रूप में हैं ॥ ३१, ३२ ॥

**तत्रापिरत्नभूतानि विरलान्येव भूतले ॥**
**महामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः पाप हराणि वै ॥ ३३ ॥**

---

(१) हिमगिरी, कैलाशगिरी प्रभृति।
(२) पुष्कर, कपिल प्रभृति।
(३) [illegible]
(४) [illegible], सरस्वती प्रभृति।
(५) वृन्दावन, बद्रीवन प्रभृति।
(६) दण्डकारण्य, नैमिषारण्य प्रभृति।
(७) काशी, वैद्यनाथ, जगन्नाथ इत्यादि।

तत्र तेष्वपि पूर्वोक्तानेकरूपतीर्थेषु भूतलेमहामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः पापहराणि रत्नभूतानि विरलान्येव तीर्थानि सन्ति अत्रापि वै पाद पूरकोव्ययः ॥ ३३ ॥

उन ऊपर लिखे हुवे अनेक रूप तीर्थों में महामाहात्म्य से युक्त तत्काल पापों के नाश करनेवाले और रत्न स्वरूप इस भूतल में कोई २ तीर्थ हैं ॥ ३३ ॥

**गंगा च यमुनाचैव तथा प्राची सरस्वती ॥**
**नर्मदा च पयोष्णी च कृष्णा वेणी सवेदिका ॥ ३४ ॥**
**सप्तपुर्य्यो गयशिरः कुरुक्षेत्रं त्रिपुष्करम् ॥**
**सेतुबन्धेश्वरादीनि तीर्थरत्नानि सुव्रत ॥ ३५ ॥**

हे सुव्रत ! गंगाद्या एता नद्यस्तथा, अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावती एताः सप्तपूर्य्यः गयशिरो गया, कुरुक्षेत्रं, त्रिपुष्करम् सेतुबन्धेश्वरादीनि च तीर्थेषु तीर्थ रत्नानि स्युः ॥ ३४, ३५ ॥

हे सुव्रत ! नदी रूप तीर्थों में गंगा, यमुना, प्राची, सरस्वती, नर्मदा, पयोष्णी, कृष्णा, और वेदिका; एवं पुरी रूप तीर्थों में अयोध्या, मथुरा, माया, [illegible]शी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावतीपुरी तथा गया एवं कुरुक्षे[illegible], [illegible], सेतुबन्धेश्वर ( रामेश्वर ) ये सब तीर्थ रत्न हैं ॥ ३४, ३५ ॥

**एषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नानदानजपादिभिः ॥**
**भवन्ति प्रत्ययाः [illegible] [illegible]कामं यथा मनम् ॥ ३६ ॥**

( स्पष्टार्थोयम् )—

इन सब तीर्थों में जैसी कामना तथा मन से स्नान, दान और जपादि किये जाते हैं, तदनुकूल फल प्राप्ति होने से विश्वास होता है ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे यो नरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्म-संप्राप्य सर्वतीर्थेषु ना स्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचितः स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोखा दिया ॥ ४० ॥

**यज्ञदानादिकं कर्म निर्धनैर्नैवसाध्यते ॥**
**तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥**
**देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपिसाध्यते ॥**
**तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥**

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्माल्लोके सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा श्रद्धा जिसको होती है वह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम है क्योंकि यह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

**सदा तीर्थपरैर्भाव्यं सर्वलोकै रिह स्फुटम् ॥**
**तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं नभविष्यति ॥ ४३ ॥**

सर्वं लोकैस्सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्भाव्यम् भवितव्यमितीह स्फुटं स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं नभूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होताहै कि सभीमनुष्योंको सदा तीर्थसेवी होनाचाहिये क्योंकि तीर्थस्नानकेसमान पुण्य औरकोई यज्ञादि नहुआहै,नहोगा ॥४३॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये ॥
सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वतीर्थमयोऽवसौ ॥ ३७ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये पापनाशाय सर्वतीर्थमयः तीर्थादन्यत्पृथग्रूपं नास्तियस्य स सर्वरूपः सर्वेश्वरः परमेश्वरः वसौ विराजते ॥ ३७ ॥

इन सब तीर्थों में सब के पाप को नाश करने के लिये सब तीर्थों के स्वरूप सर्वस्वरूप सर्वेश्वर, परमेश्वर, सदा विराजमान रहते हैं ॥ ३७ ॥

तथापि सर्वतीर्थेषु तारतम्यं प्रवर्तते ॥
विवेकेन महाभाग कलांशादिप्रभेदतः ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! तथापि सर्वतीर्थेषु विवेकेन कलांशादिप्रभेदतः तारतम्यं न्यूनाधिक्यं प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! यद्यपि सर्वतीर्थमय सर्वेश्वर सब तीर्थों में विराजमान है, तो भी विचार दृष्टि से देखने पर परमेश्वर के कला और अंशों के भेद से सब तीर्थों में फलों का न्यूनाधिक है ॥ ३८ ॥

इदं तीर्थमयं वर्षं भारतं व्यपदिश्यते ॥
कर्मक्षेत्रं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ३९ ॥

इदं भारतं वर्षं तीर्थमयं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् कर्मक्षेत्रं व्यपदिश्यते ॥ ३९ ॥

इस तीर्थमय परम पवित्र सब जगह सुख देनेवाले भारतवर्ष को कर्मक्षेत्र कहा जाता है ॥ ३९ ॥

तत्र जन्माप्यमानुष्यं योनरः सर्वसिद्धिदम् ॥
नास्नाति सर्वतीर्थेषु तेनात्मा वंचितो ध्रुवम् ॥ ४० ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे योनरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्म-संप्राप्य सर्वतीर्थेषु ना स्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचितः स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोखा दिया॥ ४० ॥

**यज्ञदानादिकं कर्म निर्धनैर्नैवसाध्यते ॥**
**तीर्थे स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥**
**देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपिसाध्यते ॥**
**तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥**

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थे स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्माल्लोके सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा श्रद्धा जिसको होती है वह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम है क्योंकि वह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

**सदा तीर्थपरैर्भाव्यं सर्वलोकै रिह स्फुटम् ॥**
**तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं नभविष्यति ॥ ४३ ॥**

सर्वे लोकैस्सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्भाव्यम् भवितव्यमितीह स्फुटं स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं नभूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होताहै कि सभीमनुष्योंको सदा तीर्थसेवी होनाचाहिये क्योंकि तीर्थस्नानकेसमान पुण्य औरकोई यज्ञादि नहुआहै,नहोगा ॥४३॥

र्थ यात्रा महापुण्या पूर्वैः पूर्वतरैः कृता ॥
लोमशाद्यिभिरन्यैश्च राजर्षिप्रवरैः पुनः ॥ ४४ ॥

पूर्वैः पूर्वतरैः प्राचीनातिप्राचीनैर्लोमशादिभिर्महर्षिभिः पुनरन्यैश्च
राजर्षिभिर्विश्वामित्रादिभिर्महापुण्या तीर्थयात्रा कृता ॥ ४४ ॥

प्राचीनातिप्राचीन लोमशादि महर्षियों ने और राजर्षिवर विश्वामि
त्रादि ने तीर्थ यात्रा को महापुण्य बनाया है ॥ ४४ ॥

तस्मात्कर्मभुवम्प्राप्य भूमिं भारतसंज्ञिकाम् ॥
यैःस्नातं सर्वतीर्थेषु तस्य जन्म कृतार्थकम् ॥ ४५ ॥

( स्पष्टम् )—

इसलिये भारतभूमि जैसी कर्मभूमि पाकर जिसने सब तीर्थों
में स्नान किया उसका जन्म सार्थक है ॥ ४५ ॥

तीर्थे तीर्थे प्रतिस्नातुं कथं शक्यं तपोधन ॥
तस्माद्रहस्यं यत्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ४६ ॥
रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं यदुच्यते ॥
तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४७ ॥

हे तपोधन ! तीर्थे तीर्थे प्रतिस्नातुं मनुष्यैः कथं शक्यं तस्मात्सर्व
र्थफलप्रदं रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं रहस्यं गोप्यं यत्तीर्थं तदहं ते
यं संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४६, ४७ ॥

हे तपोधन ! सभी तीर्थोंमें स्नान करलेना मनुष्य शक्तिसे बाह्य है इस
सभी तीर्थोंके फल देनेवाला, रत्न तीर्थों में भी परमरत्न और गोप्य जो
कहागयाहै उसकोमैं तुमसे कहताहूं सावधानहोकर सुनो ॥४६, ४७॥

ति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये
तीर्थवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

—❀—

# द्वितीयाध्यायकथारंभः ।



(सूत उवाच)

**एतन्निशम्य वचनं स्कन्दस्य कलशोद्भवः ॥**
**भूयोविज्ञापयामास मुदा परमया युतः ॥ १ ॥**

सूतरशौनकादीन कथयति यत् कलशोद्भवोऽगस्त्यस्स्कन्दस्यै तद्वचनं निशम्य श्रुत्वा परमयात्यन्तया मुदा हर्षेण युतः भूयः पुनर्विज्ञापयामास ॥ १ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि अगस्त्यजी ने स्कन्दजी के यह वचन सुनकर परम हर्ष के साथ फिर निवेदन किया ॥ १ ॥

**स्वामिंस्ते वचनादत्र महती मे प्रसन्नता ॥**
**संजाता मनसोऽत्यर्थं वारिणश्शरदोयथा ॥ २ ॥**

हे स्वामिन्! तेतववचनादत्र मे मनसः शरदः शरदृतुतोवारिणो जलस्य यथा प्रसन्नता भवति तथा अत्यर्थं अतिशयं प्रसन्नता जाता ॥ २ ॥

हे स्वामिन्! जैसे शरत्काल से जल की प्रसन्नता होती है वैसे आपके वचनों से मेरे मन को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई है ॥ (यहां प्रसन्नता का तात्पर्य्य स्वच्छता से है) ॥ २ ॥

**भगवन्तं पुनः प्रष्टुं समीहे हरनन्दन ॥**
**भूयो ममैनं सन्देहमपा कुरु दयानिधे ॥ ३ ॥**

हे हरनन्दन! पुनर्भगवन्तं प्रष्टुं समीहे दयानिधे! भूयो ममैनं सन्देहं अपाकुरु ॥ ३ ॥

हे हरनन्दन! आपसे पुनः प्रश्न करने की इच्छा करता हूं, हे दयानिधे! एक बार और मेरे सन्देह को दूर कीजिये ॥ ३ ॥

चयोक्तम्महातीर्थं गुह्यं गुह्यं महीतले ॥
य तीर्थस्य यन्नाम तन्मे वद विदाम्वर ॥ ४ ॥

हे विदाम्वर ! महीतले गुह्यं गुह्यं यन्महातीर्थं त्वया उक्तम् त
स्य यन्नाम तन्मे वद ॥ ४ ॥

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! इस पृथ्वीतल में गोप्यगोप्य अर्थात् अत्य
महातीर्थ जो आपने कहा है उस तीर्थ का जो नाम है वह
हिये ॥ ४ ॥

न्तत्तीर्थं किम्प्रमाणं किम्फलं किंसमीपगम् ॥
म्माहात्म्यं किमाधिक्यं किंदेशस्थं किमात्मकम् ॥५॥

( स्पष्टार्थोयम् )

वह कौन तीर्थ है, उसका क्या प्रमाण है, क्या फल है, किसके
है, क्या माहात्म्य है, उस तीर्थ में क्या विशेषता है, किस देश
और उसका कैसा रूप है ? ॥ ५ ॥

तत्सर्वं समाचक्ष्व विचक्षणशिरोमणे ॥
णां निश्श्रेयसार्थाय तव सूक्तं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

विचक्षणाविद्वान्सस्तेषां शिरस्सु मणिरिव तत्सम्बुद्धौ हे विचक्षण
मणे ज्ञानिशिरोमणे ! एतत्सर्वं समाचक्ष्व कथय यतस्तव सूक्तं
शोभनं उक्तं कथनं सूक्तं भवति ) तव सुवचनं नृणाम्मनुष्याणां
यसार्थाय निश्शेषकल्याणलाभाय प्रवर्तते भवति ॥ ६ ॥

हे ज्ञानिशिरोमणि ! ये सब विषय पूर्ण रीति से बतलाइये,
के आपका सुकथन मनुष्यों के परम कल्याण के लिये है ॥ ६ ॥

( सूत उवाच )

ति पृष्टः स भगवान्मुनिना कुंभयोनिना ॥
सुरसेनानीः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ७ ॥

इत्येवं कुंभयोनिना कुंभोघटोयोनिर्जन्मस्थानं यस्य स तेन मुनिना अगस्त्येन पृष्टः स गतस्मयोनिरहंकारोभगवान्सुराणां सेनानीस्स्कन्दः स्मयन् स्वचित्तोद्रेकं प्रकटयन्निवोवाच चित्तोद्रेकः स्मयोमद इत्यमरः ॥ ७ ॥

सूतजी बोले कि जब कुंभयोनि अगस्त्य मुनि ने इसप्रकार प्रश्न किया तो निरहंकारी भगवान् स्कन्दजी ने अपने हृदय में जो तीर्थों के भेद भरे थे उनको प्रकट करते हुवे कहा ॥ ७ ॥

शृणुविप्रेन्द्र वक्ष्यामि गोप्यं तीर्थमनुत्तमम् ॥
यन्नाम श्रुतिमात्रेण पापराशिः प्रलीयते ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! अनुत्तमं गोप्यं तीर्थं प्रवक्ष्यामि शृणु। यन्नामेति स्पष्टम् ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! एक उत्तम और गोप्य तीर्थ को कहता हूं, सुनो ! जिसके नाम श्रवण करने से पापराशि नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अस्ति देशस्स विपुलस्समुद्रोवालुकामयः ॥
महिष्ठोमेदिनीपृष्ठे निसर्गादेव पावनः ॥ ९ ॥

अस्ति स मेदिनीपृष्ठे पृथ्वीपृष्ठे महिष्ठः अतिशयेन महान् महिष्ठः पूज्यतमः निसर्गात्स्वभावादेव पावनः पवित्रः वालुकामयः समुद्रः विपुलो देशः ॥ ९ ॥

पृथ्वी पर अतिशय पूज्य स्वभाव से हीं पवित्र वालुकामय समुद्र एक विपुल ( बहुत बड़ा ) प्रदेश है ॥ ९ ॥

यत्रोत्तङ्को नाम मुनिर्वालुकामयसागरे ॥
चिरकालं चकारोग्रंसंतपस्तीव्रन्तपोधनः ॥ १० ॥

यत्र देशे वालुकामयसागरे तपोधन उत्तङ्कोनाममुनिश्चिरकाल न्तीव्रं तदिग्रन्तप उग्रंश्चकार ॥ १० ॥

यह दुष्ट दानव मुख से कभी अग्नि को कभी वायु को वमन करता हुवा उत्तंकमुनि की तपस्या में विघ्न करता रहता था ॥ १३ ॥

इत्थन्तमपकुर्वाणं दृष्ट्वा विप्रः स तापसः ॥
कथमेषभवेद्वध्यश्चिन्तयामास चेतसि ॥ १४ ॥

इत्थं पूर्वोक्ताग्निवमनवायूद्गिरणादिव्यापारेणापकुर्वाणंतंदैत्यं दृष्ट्वा एष दैत्यः कथं वध्योभवेदिति स तापसोविप्रः उत्तंकश्चेतसि चिन्तयामास तद्वधं विचारयामास ॥ १४ ॥

इस प्रकार मुख से अग्नि और वायु को उगल करके अपकार करनेवाले दैत्य को देखकर वह तपस्वी ब्राह्मण उतंकमुनि अपने मन में विचारने लगे कि किसप्रकार से वह मारा जाय ॥ १४ ॥

स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि प्रलयानलसन्निभः ॥
क्षमावान् स्वतपोभंगभिया ना युक्त स्वयम् ॥ १५ ॥

क्रोधसमये प्रलयानलसन्निभः प्रलयाग्निसमः क्षमावान् शान्तचेताः स मुनिः स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि दैत्यवधकरणे स्वयं समर्थोऽपि स्वतपोभंगभिया भयेन स्वयं न अयुङ्क्त दैत्यवधाय स्वयं नोद्यतः । अत्र स्वयम् इति स्थले प्रथमाविपाठः ॥ १५ ॥

क्रोध के समय में प्रलयकाल के अग्नि के सदृश उस क्षमावान् मुनि ने निज के सामर्थ्य होते हुए भी अपनी तपस्या के भंग होने के भय से स्वयं उसका वध नहीं किया ॥ १५ ॥

ततो बुद्ध्या विचार्य्यासौ नृपं कुवलयाश्वकम् ॥
धुंधोर्वधाय धर्म्मात्मा तद्वै गत्वा न्ययोजयत् ॥ १६ ॥

[illegible]

**धुन्धुर्नाम महादुष्टो मधुसूनुर्महाबलः।**
**नित्यं रजस्सु स्वपिति मदाश्रमसमीपगः॥ २०॥**

महाबलो भीषणपराक्रमो महादुष्टो मधुसूनुः मधुनामको दानवः पूर्वमभूत् यद्वधं भगवता विष्णुनाकारि येन भगवान् मधुसूदनेति नाम्ना प्रसिद्धिंगतः तत्कथाविस्तारं पुराणेषु प्रसिद्धं तस्य मधोः पुत्रोमहादुष्टः धुन्धुर्नामकः मदाश्रमसमीपगः मदीयाश्रमनिकटे वसन् नित्यं रजस्सु वालुकास्वन्तर्हितः स्वपिति शेते॥ २०॥

एक मधुनामक दैत्य था (जिस मधु को विष्णु भगवान ने वध किया जिस कारण भगवान का नाम मधुसूदन पड़ा जिस की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है) जिसका पुत्र महाबली और महादुष्ट धुन्धु नाम का दैत्य है जो मेरे आश्रम के निकट ही वालुकाओं में छिपकर सदा सोता है॥ २०॥

**स मे विघ्नं करोत्युग्रैः सदा पर्वणि पर्वणि।**
**तं ध्वंसय महाबाहो! विष्णोरंशोऽसि भूतले॥ २१॥**

स धुन्धुर्मे मम पर्वणि पर्वणि सदा उग्रैर्विघ्नमुपद्रवं करोति हे महाबाहो! तं ध्वंसय नाशय यतस्त्वं भूतले विष्णोरंशोऽसि॥ २१॥

वह धुन्धु नामक दानव मेरे प्रत्येक पर्वों में अत्यन्त विघ्न करता है। हे महाबाहु! तुम पृथ्वी में विष्णु भगवान् का अंश हो इसलिये उसका नाश करो॥ २१॥

**स एवमुक्तोनृपतिर्ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः॥**
**साहाय्यं मनसा कर्तुं ब्राह्मणार्थे समुद्यतः॥ २२॥**

सत्यसंगरः सत्यव्रतः ब्रह्मण्यः ब्रह्मनिष्ठः ब्राह्मणप्रिय इतिवा स नृपतिः राजा एवं उक्तः उत्तंकमुनिना कथितो ब्राह्मणार्थे साहाय्यं कर्तुं मनसा समुद्यतः॥ २२॥

**धुन्धुर्नाम महादुष्टो मधुसूनुर्महाबलः ।**
**नित्यं रजस्सु स्वपिति मदाश्रमसमीपगः ॥ २० ॥**

महाबलो भीषणपराक्रमो महादुष्टो मधुसूनुः मधुनामको दानवः पूर्वमभूत् यद्वधं भगवता विष्णुनाकारि येन भगवान् मधुसूदनेति नाम्ना प्रसिद्धिंगतः तत्कथाविस्तारं पुराणेषु प्रसिद्धं तस्य मधोः पुत्रोमहादुष्टः धुन्धुर्नामकः मदाश्रमसमीपगः मदीयाश्रमनिकटे वसन् नित्यं रजस्सु वालुकास्वन्तर्हितः स्वपिति शेते ॥ २० ॥

एक मधुनामक दैत्य था ( जिस मधु को विष्णु भगवान ने वध किया जिस कारण भगवान का नाम मधुसूदन पड़ा जिस की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है ) जिसका पुत्र महाबली और महादुष्ट धुन्धु नाम का दैत्य है जो मेरे आश्रम के निकट ही वालुकाओं में छिपकर सदा सोता है ॥ २० ॥

**स मे विघ्नं करोत्युग्रः सदा पर्वणि पर्वणि ।**
**तं ध्वंसय महाबाहो ! विष्णुरंशोऽसि भूतले ॥ २१ ॥**

स धुन्धुर्मे मम पर्वणि पर्वणि सदा उग्रं विघ्नमुपद्रवं करोति हे महाबाहो ! तं ध्वंसय नाशय यतस्त्वं भूतले विष्णोरंशोऽसि ॥ २१ ॥

यह धुन्धु नामक दानव मेरे पवित्र पर्वों में अत्यन्त विघ्न करता है । हे महाबाहु ! तुम पृथ्वी में विष्णु भगवान् का अंश हो इसलिये उसका नाश करो ॥ २१ ॥

**स एवमुक्तो नृपतिर्ब्राह्मणेन [illegible] सत्यसंगरः ॥**
**माहात्म्यं मनसा कर्तुं प्रार्थनार्थं समुद्यतः ॥ २२ ॥**

सत्यसंगरः सत्यव्रतः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नृपतिः [illegible] एवं उक्तः [illegible] [illegible] प्रार्थनार्थं माहात्म्यं कर्तुं मनसा समुद्यतः ॥ २२ ॥

इस के अनन्तर उस महात्मा ने पुंनागक देश
में,स्व अपनी बुद्धि में राजा कुवलयाश्व को निवेदन
जाकर उनसे कहा ॥ १६ ॥

राजन्मे क्रियतां कर्म किञ्चिन्मत्वे निवेदये ॥
तपस्विनि दयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ।

हे राजन्! किञ्चित्कर्म क्रियतां यत् तुभ्यं निवेद
विषये दयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ॥ १७ ॥

हे राजन्! जिस काम को आपसे निवेदन करत
कीजिये। काम यह है कि तपस्वियों के ऊपर दया करके
को विनाश कीजिये ॥ १७ ॥

राजानो हि महाराज विष्णोरंशसमुद्भवाः ॥
तथाच श्रूयते लोके नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥

हे महाराज! राजानः विष्णोरंशसमुद्भवा भवन्ति तथाच
ना विष्णुः ना मनुष्यः अर्थान्मनुष्य रूपो विष्णुरिति लोके श्रू

हे महाराज! राजा लोग विष्णुभगवान के अंश
होते हैं। और संसार में भी यही कथन प्रसिद्ध है॥ १८

यद्दुःखं ममराजेन्द्र श्रूयतां श्रुतिदानतः ॥
परोपकारकरणे यूयं धात्रा विनिर्मिताः ॥ १९

हे राजेन्द्र! ममयद्दुःखं तच्छ्रुतिदानतः श्रूयतां यूयं
करणे धात्रा ब्रह्मणा विनिर्म्मिताः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र! मेरा जो दुःख है सो कान देकर सुनिये,
परोपकार करनेवास्तेही विधाता से निर्म्माण किये गये हैं ॥

हे द्विज ! तेन कर्मणा स राजा कुवलयाश्वः धुंधुमार इतिख्यातो संज्ञांगतः मधोर्वधेन मधुसूदनवत् । सोयं वालुकामयः समुद्रशुद्ध [illegible]ोस्ति ॥ २५ ॥

हे विप्र ! उस कर्म को करने ( धुंधु को मारने ) से उस [कुव]लयाश्व नाम के राजा का नाम धुंधुमार हुवा, और वही यह [वा]लुकामय शुद्ध प्रदेश है ॥ २५ ॥

---

[illegible] मध्य से निकले तबतक रामचन्द्रजी ने उस ब्रह्मास्त्र से समुद्र को शोष कर पदल [अप]नी सेना को पार लगाने की प्रतिज्ञा की, तब समुद्र की मानहानि देख देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा मना किया और समुद्रदेव सम्मुख आकर प्रार्थना कर बोले कि हे राजकुमार ! हम काम से, लोभ से, भय से, किसीप्रकार उस जल को रोक नहीं सकते हैं आपकी जैसी इच्छा है वही हम भी करने को तैयार हैं और जो आप करेंगे उस को हम सहन करेंगे। आपकी सेना पार जावेगी उस समय कोई जीव उस को नहीं सता सकता किन्तु यह जल राशि बीच २ में उत्तम उत्तम स्थल दिखावेगा। ऐसा सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा कि इस अमोघ शस्त्र को किस दिशा में छोड़ें? तब समुद्र ने कहा कि उत्तर के देशों में एक द्रुमकुल्य नाम का मेरा पुण्यस्थान है वहांपर बहुत घोर रूप आभीरादि पापी बस कर मेरे जल को स्पर्श करते और पीते हैं। हे राम ! इस उत्तम शर को वहां छोड़िये। क्योंकि उन पापियों के स्पर्श से जो पाप होता है उस को मैं नहीं सहन कर सकता। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसी देश में शर छोड़ दिया। तब से वह देश मरुकान्तार (मरुजाङ्गल) नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिस स्थान में शर गिरा वहां पाताल से पानी ऊपर आने लगा, पृथ्वी में छिद्र होगया जिसको व्रणकूप कहते हैं। [illegible] समुद्र के [illegible] इस देश का मरुकान्तार नाम [illegible] हुआ। "विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेव च ॥ शोषयित्वा तु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥ वरं तस्मै ददौ विद्वानमरविक्रमः ॥" [illegible] इस देश [illegible] एवमेभिः संयुक्तो बहुभिः संयुतोमरुः । रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥" [illegible]

सत्य का पालन करनेवाले ब्राह्मणों के भक्त उस राजा (कुवलया
से उत्तंक मुनि ने जब ऐसा कहा तब उत्तंक मुनि की सहाय
करने के लिये राजा ने मनसा संकल्प किया ॥ २२ ॥

**एकविंशतिसाहस्रैः संख्याकैः पुत्रकैर्युतः ॥**
**गत्वा धुंधुं जघानाशु विष्णुवीर्योपबृंहितः ॥ २३ ॥**

विष्णुवीर्योपबृंहितः विष्णुतुल्यपराक्रमः विष्णोरंशत्वादि
राजा स्वकीयैरेकविंशतिसहस्रैः संख्याकैः पुत्रकैर्युत उत्तंकमुनेराश्रम
गत्वा आशु शीघ्रं धुंधुं जघान ॥ २३ ॥

विष्णुभगवान के तुल्यबली उस राजा ने अपने इक्कीस ह
पुत्रों के साथ उत्तंक मुनि के आश्रम के समीप जाकर उस धुंधु दा
को मारडाला ॥ २३ ॥

**धुंधोर्मुखाग्निना दग्धास्सर्वेते राजसूनवः ॥**
**दैवेन दुर्विनक्यंण त्रय एवावशेपिताः ॥ २४ ॥**

ते सर्वे राजसूनवः राजपुत्राः धुंधोर्मुखाग्निना दग्धा भस्मीभूताः
जरयेण दैवेन तेषु त्रय एवा वशेपिताः ॥ २४ ॥

इस युद्ध में राजा कुवलयाश्व के सभी पुत्रों को धुंधुदानव ने
मुख में अग्नि प्रगट करके जलादिया, भाग्य से तीन लड़के
रे ॥ २४ ॥

**[illegible] [illegible] [illegible] तेन [illegible] ।**
**[illegible] [illegible] [illegible] ॥ २५ ॥**

[illegible]

हे द्विज ! तेन कर्म्मणा स राजा कुवलयाश्वः धुंधुमार इतिख्यातो नाम संज्ञांगतः मधोर्वधेन मधुसूदनवत् । सोयं वालुकामयः समुद्रश्शुद्ध देशो स्ति ॥ २५ ॥

हे विप्र ! उस कर्म को करने ( धुंधु को मारने ) से उस कुवलयाश्व नाम के राजा का नाम धुंधुमार हुवा, और वही यह वालुकामय शुद्ध प्रदेश है ॥ २५ ॥

---

के मध्य से निकले तबतक रामचन्द्रजी ने उस महास्त्र से समुद्र को शोष कर पैदल अपनी सेना को पार लेजाने की प्रतिज्ञा की, तब समुद्र की मानहानि देख देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा मना किया और समुद्रदेव सम्मुख आकर प्रार्थना कर बोले कि हे राजकुमार ! हम काम से, लोभ से, भय से, किसीप्रकार उस जल को रोक नहीं सकते हैं आपकी जैसी इच्छा है वही हम भी करने को तैयार हैं और जो आप करेंगे उस को हम सहन करेंगे । आपकी सेना पार जायगी उस समय कोई जीव उस को नहीं खा सकता किन्तु यह जल राशि बीच २ में उत्तम उत्तम स्थल दिखावेगा । ऐसा सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा कि इस अमोघ शस्त्र को किस देश में छोड़ें' तब समुद्र ने कहा कि उत्तर के देशों में एक द्रुमकुल्य नाम का मेरा पुण्यस्थान है वहांपर बहुत चोर डाकू आभीरादि पापी आ आ कर मेरे जल को स्पर्श करते और पीते हैं । हे राम ! इस उत्तम शर को यहांही छोड़िये । क्योंकि उन पापियों के स्पर्श से जो पाप होता है उस को मैं नहीं सहन कर सकता । यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उसी देश में शर छोड़ा । तब से वहदेश मरुकान्तार ( मरुजांगल ) नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिस स्थान में शर गिरा वहां पाताल से पानी ऊपर आने लगा, पृथ्वी में छिद्र होगया जिसको व्रणकूप कहते हैं । इसप्रकार अपने अम्म्यस्त्र से समुद्र के कुक्षिगत जल को शोष लिया और सर्वत्र रेतम् दीखने लगे । जब से इस देश का मरुजांगल नाम तीनों लोक में विख्यात हुआ । " विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरु कान्तार मेवच ॥ शोषयित्वातु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥ वरं तस्मै ... मरवे ऽमरविक्रमः ॥ " पीछे रामचन्द्रजी ने उस मरुदेश को वरदान ... ग में पशुओं के चरने वाले तृण बहुत होंगे और रोग बीमारी उस देश ... फल मूल ... अनेक औषधियों से युक्त स्नेहयुक्त क्षीरसहित ... गा । " एवमेभिश्च संयुक्तो बहुभिः ... शेषः पंथा बभूवह ॥ " श्री रामचन्द्रजी ... का आधार हुआ और उसके समस्त मार्ग ... वाल्मीकीय युद्धकाण्डे २१-२२ सर्गे ॥

**स्वभावनिर्मलो लोके निर्जलोल्पमहीरुहः ।**
**निर्भयोनिर्धनश्चापि नैसर्गिकगुणान्वितः ॥ २६ ॥**

अयं देशः लोके स्वभावेन स्वप्रकृत्या निर्मलः स्वच्छः निर्ज
लरहितः अल्पमहीरुहः अल्पाश्रतेमहीरुहश्चाल्पमहीरुहस्तोक वृक्ष
ल्मादिजनकः । निर्भयः निर्धनः अपिच नैसर्गिकगुणान्वित
कृतिकगुणसम्पन्नोस्ति ॥ २६ ॥

संसार में यह देश स्वभावसुन्दर निर्जल तथा वृक्ष लता गुल्मादि
ायः रहित है और निर्भय एवं निर्धन तथा प्राकृतिक गुणों से
है ॥ २६ ॥

**त्रस्था मानवाः सर्वे सरलाः शुद्धमानसाः ।**
**पट्यकौर्य्यतास्कर्य्यवर्जिताः प्रायशस्स्थिताः ॥ २७ ॥**

तत्रस्थास्तद्देशसमुत्पन्नाः सर्वे मानवाः सरलाः शुद्धप्रकृतयः
नसाः पवित्रान्तःकरणाः प्रायशः कापट्यकौर्य तास्कर्य्यवर्जिताः
सन्ति ॥ २७ ॥

न देश के सभी मनुष्य सीधे और शुद्धचित्त तथा कपट,
ं चोरी इत्यादि दुर्गुणों से बहुधा वर्जित होते हैं ॥ २७ ॥

**चारविनिर्मुक्ता युक्ताश्चातिथिपूजने ॥**
**ास्तथाभूपाः सर्वथा पापभीरवः ॥ २८ ॥**

ानवा बाह्याचारेण बाह्यशुद्धिरूपस्पर्शास्पर्शशौचाचारादिना-
हिता अतिथिपूजने अतिथिसत्कारे युक्ताश्च भवन्तीति ।
ा भूपा राजानः सर्वथा पापभीरवो भवन्ति ॥ २८ ॥

. बाहरी आचार-विचार से रहित और अतिथि सेवा में रत
स देश के राजा सर्वथा पाप से डरते रहते हैं ॥

**विप्राश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविवर्जिताः।**
**सुशीलाः साधवः सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाः॥२६॥**

विप्रा ब्राह्मणाश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविवर्जिता. सुशीलाः साधवः सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाश्च भवन्ति॥ २९॥

उस देश के ब्राह्मण वेद शास्त्र को नहीं जानते और दान नहीं लेते एवं सुशील साधु और शान्त तथा निष्कपट जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं॥ २९॥

**तद्देशीयाः स्त्रियश्शुद्धा अतिचांचल्यवर्जिताः।**
**ऋजुस्वभावशालिन्यो देवतातिथिपूजिकाः॥ ३०॥**

तद्देशीयास्तद्देशप्रसूताः स्त्रियः शुद्धाः शुद्धाचाराः अतिचांचल्य वर्जिताः ऋजुस्वभावशालिन्यः कोमलप्रकृतयो देवतातिथिपूजिकाश्च भवन्तीति॥ ३०॥

उस देश की स्त्रियां शुद्धाचरणवाली और अति चंचलता से रहित, कोमल स्वभाव की एवं देवता तथा अतिथि की सेवा करनेवाली होती हैं॥ ३०॥

**तस्मिन्देशे महाभाग! कश्चित्सिद्धो भविष्यति॥**
**सोऽप्येनां पृथिवीं पूतां पावयन् संचरिष्यति॥ ३१॥**

हे महाभाग! तस्मिन्देशे कश्चित्सिद्धो भविष्यति सोऽप्येनां पूतां पवित्रां पृथिवीं पावयन्नतिशयेन पवित्रीकुर्वन्संचरिष्यति॥ ३१॥

हे महाभाग! उस देश में कोई सिद्ध होगा जो इस पवित्र पृथिवी को अतिशय पवित्र करता हुवा विचरेगा॥ ३१॥

**प्रजास्तद्देशवासिन्यो देहापारकृतादराः॥**
**उष्ट्रारोहाश्चमेषारिपायिन्यः स्वष्टभोजनाः॥ ३२॥**

तद्देशवासिन्यः प्रजाः देशाचारकृतादराः देशस्य ये आचा
कृत आदरो यासिस्ता देशाचारकृतादराः उष्ट्रारोहाः यानेषु उष्ट्रप
भमहिषादयो धर्मशास्त्रे निषिद्धास्तथापि तथागाः चर्मपात्रजलं म
तो ऽशुद्धं तथापि चर्मवारिपायिन्यः चर्मजलपानशीलाः स्पृष्टभोज
असंस्कृतान्यवहार्य्यापांक्तेयदासदासीप्रभृतिशूद्रादिस्पर्शभोजनं संस्क
नाशकं धर्मशास्त्रे दूषितं च तथापि कुर्वन्तीति स्पृष्टभोजनाः ॥ ३२ ॥

उस देश के रहनेवाली प्रजा अपने देशाचार का बहुत आ
करती है ऊंटों की सवारी करती है चर्मजल पीती है हर किसी के हा
लगाया अन्नादि भोजन करती है ॥ ३२ ॥

( ऊंट की सवारी चर्मजल पान स्पर्शास्पर्श के विचार छोड़कर भोजन इत्यादि धर्मग्रन्थों के अनुसार प्रायश्चित सूचक होता है इसीलिये श्रावणीकर्म के संकल्प में इन सबों को क्षुद्र पापों में परिगणित किया गया है परन्तु एतद्देशी प्रजा को देशाचारवश करना ही पड़ता है ॥ )

तथापि तद्दोषवर्गैरस्पृष्टास्तत्प्रभावतः ॥

तथापि अर्थात्पूर्वोक्तपापाचरणादपितस्य सिद्धस्य प्रभावतः
तद्दोषवर्गैरुक्तदोषसमूहैरस्पृष्टा निर्लेपाः प्रजा भवन्तीतिशेषः ॥

तथापि उस सिद्धके प्रभावसे वे उपरोक्तदोष प्रजावोंको नहीं लगते॥

ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये द्विपदाम्वर ॥ ३३ ॥
सर्वे तीर्थ शिरोरत्नं महातीर्थं विराजते ॥
ख्यातं यत्सर्वलोकेषु कपिलायतनन्त्विति ॥ ३४ ॥

हे द्विपदाम्वर ! ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये देशे सर्वतीर्थशिरोरत्नं
तीर्थललामभूतं महातीर्थं विराजते यत्तु सर्वलोकेषु कपिलायतनमिति
तं प्रसिद्धमस्तीति ॥ ३४ ॥

हे मनुष्य श्रेष्ठ ! ऐसे गुणों से युक्त उस देश में सब तीर्थों का मुकुट एक महातीर्थ है। जो सब लोकों में कपिलायतन इस नामसे प्रसिद्ध है॥३४

**समुद्रे वालुकापूर्णे [illegible] स्थितम् ॥**

तत्कपिलायतनम् [illegible] महाद्वीपस्य स्थितमस्ति ॥

यह कपिलायतन वालुकामय समुद्र में एक महाद्वीप के सदृश वर्तमान है॥

**निर्जलेषु जलप्रायद्वीपोयं शर्करामयः ॥ ३५ ॥**
**नाना मृगगणाकीर्णः सर्वकालनिरामयः ॥**

निर्जलेषु निर्जलदेशेषु शर्करामयः सिकतामयः नानामृगगणाकीर्णः विविधमृगजातिव्याप्तः सर्वकालनिरामयोयं जलप्रायद्वीपः अर्थादस्मिन्न- [illegible] जलमपि भवत्येव ॥

इन निर्जल प्रदेशों में भी यह वालुकामय द्वीप अनेक मृगगणों से युक्त सर्वदा निरामय और जलयुक्त है, अर्थात निर्जलदेश होने पर भी यहां जल हो ही जाता है।

**प्रसिद्धात्पुष्करात्तीर्थात् [illegible] तपोधन ॥ ३६ ॥**
**पश्चिमे कापिलं तीर्थं [illegible] योजने ॥**
**कृष्णसारमयी भूमिर्दर्शने यत्र पावनी ॥ ३७ ॥**

हे तपोधन ! [illegible]

[illegible] ॥ ३६, ३७ ॥

हे तपोधन ! इस प्रसिद्ध पुष्कर [illegible] ॥ ३६, ३७

**[illegible] विप्रेन्द्र ! [illegible] ॥**

हे विप्रेन्द्र ! [illegible]

[illegible]

हे विप्रवर ! यह कृष्णा-सारमयी पवित्र भूमि सत्कर्म करनेवालों को सदा स्वर्ग देनी है ॥

**सर्वतीर्थवरं क्षेत्रं सर्वक्षेत्रवरं तथा ॥ ३८ ॥**
**सारात्सारतरं स्थानं पुण्यात्पुण्यतरं पुनः ॥**

( स्पष्टार्थः )—

यह स्थान सब तीर्थों से तथा सब क्षेत्रों से श्रेष्ठ है और उत्तम से उत्तम तथा पवित्र से भी पवित्र है ॥

**त्रिषु लोकेषु भूर्लोको भूर्लोके लोक एव हि ॥ ३९ ॥**
**लोके द्वीपवती पृथ्वी जम्बूद्वीपस्ततोऽधिकः ॥**
**तद्द्वीपनवके विप्र श्रेष्ठं भारतमुच्यते ॥ ४० ॥**

( १ ) इस भूर्लोक में संक्षेप से जम्बूद्वीपादि सातों द्वीपों तथा उनमें से केवल जम्बूद्वीप के ही अन्तर्गत नवों खण्डों को दिखाते हैं। भूगोल के आधा उत्तर का भाग जम्बूद्वीप है, और जम्बूद्वीप की दक्षिणी सीमा पर क्षारसमुद्र है, और इसके उत्तर तीर के देशों को निरक्षदेश कहते हैं, इन निरक्षदेश में लंका ( सिलोन ), इससे पश्चिम रोमक ( रूम ), इससे पश्चिम सिद्धपुर ( अमेरिका ), उससे आगे यमकोटि ये चार स्थान हैं, अर्थात् लंका से पूर्व यमकोटि, पश्चिम रोमक और ठीक नीचे सिद्धपुर है। ये चारों स्थान भूगोल के चतुर्थांश पर हैं। और इन चारों स्थानों से मेरुपर्वत जिधर दीख पड़े वही उत्तर है। इसलिये लंका से उत्तर हिमगिरि है जो पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है। और हिमगिरि से उत्तर हेमकूटपर्वत है, यह भी पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है, एवं इससे उत्तर निषधपर्वत समुद्र पर्यन्त गया है। इन सबों के बीच २ में नौकाकार के देश बने हैं जिनको खण्डदेश कहते हैं। उनमें पहला भारतवर्ष है, इसके उत्तर का किंपुरुष देश है, उससे उत्तर हरिवर्ष है एवं नीचे जो सिद्धपुर आजकल के अमेरिका है, उससे उत्तर श्वेतवर्ष [illegible] पूर्व-पश्चिम समुद्र पर्यन्त है, उसके उत्तर श्वेतगिरि है और उसके उत्तर नीलगिरि है। इनके बीच २ में भी देश हैं। सिद्धपुर और शृंगवान [illegible], देश को कुरुवर्ष कहते हैं, शृंगवान और श्वेतगिरि के बीच में हिरण्मयवर्ष है [illegible]गिरि और नीलगिरि के बीच में रम्यकवर्ष है। इस प्रकार पृथ्वी में ८ देशों [illegible]। फिर यमकोटि जो पूर्व में कहा गया है वहाँ से एक [illegible] से निकला हुआ नीलगिरि तक पहुँचा है, उसके [illegible]

त्रिषु भूर्भुवस्स्वर्लोकेष्वयंभूर्लोकः अस्मिन् भूर्लोके हि यतः लोको जन एव अत्र लोक शब्दो भुवन जन वाचकः लोकस्तु भुवनेजने इत्यमरोक्त्या अतोऽस्मिल्लोके भुवने पृथ्वी द्वीपवती द्वीपा विद्यमानाः सन्त्यस्या अस्याम्वेति द्वीपवती ततस्तेषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपोऽधिको महानिति। वर्षाणां नवकानां समाहारो वर्षनवकम् तस्य जम्बूद्वीपस्य वर्षनवकं तद्वर्षनवकं तस्मिन् हे विप्र! श्रेष्ठं भारतं उच्यते॥३९, ४०॥

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक ये तीन लोक हैं इन तीनों लोकों में यह भूर्लोक है इस भूर्लोक में ही मनुष्य रहते हैं इसलिये इस लोक में सातद्वीपवाली पृथ्वी नव देशों में बंटी हुई है उन सात द्वीपों में जम्बूद्वीप सब से बड़ा द्वीप है इस जम्बूद्वीप के नव खण्ड हैं उन में सब से श्रेष्ठ भारतवर्ष है॥ ३९, ४० ॥

---

*बीच में भद्राश्व सातवां देश है, और पश्चिम में केतुदेश से गन्धमादन नाम का एक पहाड़ निकलकर चले हैं। निषध से मिलता हुआ नील तक गया है। उसके और समुद्र के बीच में केतुमाल आठवां देश है एवं निषध, नील, माल्यवान और गन्धमादन इन चार महापर्वतों से घिरा हुआ इलावृत नाम का पृथ्वी का नवमखण्ड है। इसको धार्मिकलोग देवताओं का क्रीड़ा-भवन अर्थात् स्वर्गभूमि कहते हैं। इसतरह पृथ्वी के गोलार्द्ध रूप जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष, किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष और कुरुवर्ष [illegible] से [illegible] तक है और पूर्वसमुद्र के किनारे भद्राश्ववर्ष, पश्चिमसमुद्र के तीर पर केतुमालवर्ष एवं बीच में इलावृत है, जिसके चारों ओर दक्षिण निषध, पूर्व माल्यवान, उत्तर नीलगिरि, पश्चिम गन्धमादन से घिराहुआ इलावृत नवमवर्ष स्वर्गभूमि है ये नव खण्ड हैं।

अब इस भारतवर्ष में भी नव खण्ड और सात कुलाचल हैं, जिनको भी लिखता हूं। भारतवर्ष भरतजी के नाम से है यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है इसके बीच में पहला इन्द्रखण्ड, दूसरा कसेरु, तीसरा ताम्रवर्ण, चौथा गभस्ति, पांचवां कुमारिकाखण्ड, छठा नागखण्ड, सातवां सौम्य, आठवां वारुण और नवां गन्धर्वखण्ड है। धर्मेन्द्ररक्षा और धार्मिक-धर्म, केवल इस कुमारिका के निवासियों में ही है। और देशों में वर्णाश्रमधर्मादि का विचार नहीं है। इस (भारतवर्ष) में महेन्द्र, [illegible], [illegible], ऋक्ष, पारियात्र, सह्य और विन्ध्य ये सात कुलपर्वत हैं, [illegible]।

तत्रापि तीर्थानि पुनः साराणीति प्रचक्षते ॥
तेषु सत्तीर्थरत्नानि प्रयागादीनि सत्तम ॥ ४१ ॥

हे सत्तम ! अगस्त्य ! तत्र भारतेऽपि पुनः साराणि परमोत्कृष्टानि तीर्थानीति प्रचक्षते तेषु सारतीर्थेषु प्रयागादीनि तीर्थरत्नानि सन्तीति ॥४१॥

हे मुनि सत्तम ! उस भारतवर्ष में और भी उत्तमोत्तम तीर्थ हैं उन उत्तमोत्तम तीर्थों में भी प्रयाग आदि सत्तीर्थ रत्न हैं ॥ ४१ ॥

तेष्वपि प्रथमं केचिद्विमल्विज्ञानचक्षुषः ॥
सारात्सारतरं प्राहुः कपिलालयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

केचिद्विज्ञानचक्षुषः विज्ञानमेव चक्षुर्येषान्ते तेष्वपि सत्तीर्थरत्नेषु [illegible]-सारात्सारतरमत्युत्कृष्टं कपिलालयमुत्तमम्प्राहुः ॥ ४२ ॥

विज्ञान दृष्टि से देखने वाले अनेक महर्षि लोग उन सत्तीर्थ [illegible] में सारात्सारतर इस उत्तम कपिलालय को ही कह गए हैं ॥४२॥

[illegible]त्तीर्थस्य माहात्म्यं कलौ जानन्ति केचन ॥
[illegible]ः सर्वे नजानन्ति महामोहान्धचक्षुषः ॥ ४३ ॥

[illegible]लौ कलियुगे एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं केचनजना जानन्ति महा-[illegible]चक्षुषः दारा पुत्र मित्र धन कुटुम्ब परिवारादिरूपोऽयं संसार [illegible]मोहः अस्मिन्निमग्ने चक्षुर्षायेषान्ते महामोहान्धचक्षुषोभवन्ति ते [illegible]जानन्तीति ॥ ४३ ॥

[illegible]लियुग में इस तीर्थ के माहात्म्य को कोई कोई मनुष्य जानते [illegible] मित्र धन कुटुम्ब परिवारादि रूप संसार के महामोह से [illegible] हैं वे नहीं जानते ॥ ४३ ॥

[illegible]चामहत्त्वंच नवेत्ति विकलोजनः ॥
[illegible] पारमार्थिकः ॥ ४४ ॥

विकलः स्त्री पुत्रादि परिवारेभ्य उद्विग्नचित्तोजनः महत्वंचामहत्वं च न वेत्ति न जानाति लोकोजनःगतानुगतिकः येनास्मत्पितरोयाता येन याताः पितामहास्तेनमार्गेण गन्तव्यमितिमार्गावलम्बीति पारमार्थिकः ईश्वर प्राणिधान रूप परमार्थसाधको लोकोजनोनेति॥ ४४॥

स्त्री, पुत्र, धन परिवारादि की अभिलाषाओं में विह्वल चित्त मनुष्य गतानुगतिक होते हैं अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलनेवाले होते हैं वे ईश्वर सम्बन्धी परमार्थी ज्ञान के साधक नहीं होते, इसलिये वे इसके महत्व व अमहत्व को नहीं जान सकते क्योंकि उन्हें अन्य विषय के मनन करने का अवकाश ही नहीं मिलता॥ ४४॥

**सारंच यदसारंच शास्त्रादेव हि मन्यते॥**
**यस्य शास्त्रमयं चक्षुः सचक्षुष्मान्नचेतरः॥ ४५॥**

यत्सारं यदसारं च वस्तु तच्छास्त्रादेव हि यतो मन्यते॥ अतः यस्य चक्षुः शास्त्रमयं भवति स चक्षुष्मान् नचेतरः॥ ४५॥

जो सार वस्तु है और जो असार वस्तु है वह शास्त्र से ही जाना जाता है जिसका शास्त्रमय नेत्र है वही नेत्रवान् है दूसरा नहीं॥ ४५॥

**सारात्सारतरं विद्धि तीर्थं कापिल दैविकम्॥**
**मा संशय महाभाग! मदुक्ते त्वं कदाचन॥ ४६॥**

हे महाभाग! कपिलोदेवोयस्य तत्कापिलदैविकम् तीर्थं सारात्सारतरं विद्धि जानीहि मदुक्ते मदीय कथने कदाचन मा संशय संदेहं मा कुरु॥ ४६॥

हे महाभाग! इस कपिल तीर्थ को उत्तम से उत्तम जानो, मेरे इस कथन में कभी सन्देह मत करो॥ ४६॥

मार्गं मासेव मासेषु सर्वतीर्थेषु तीर्थ राट् ॥
मोक्षकहेतुं विज्ञाय गोपितोयं सुरैः किल ॥ ४७ ॥

मासेषु द्वादशसु चैत्रादिषु मासानाम्मार्गशीर्षो हमिति भगवदुक्त्या
मार्गशीर्ष इव सर्वतीर्थेषु प्रयागादिषु अयं कपिलाश्रमस्तीर्थराट् तीर्थराजः
...मं मोक्षैक हेतुं विज्ञाय किल सुरैरयंगोपितः ॥ ४७ ॥

चैत्रादि बारहों मासों में सब से श्रेष्ठ जैसे मार्गशीर्ष मास है वैसे
... प्रयागादि सब तीर्थों में श्रेष्ठ यह तीर्थराज कपिलाश्रम है, देवताओं
... मोक्ष प्राप्ति का निदान इसी को समझा, इसलिये गुप्त करादिया ॥४७॥

...नास्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शक्योस्मिषण्मुखैः ॥
...पोप्यशेषं स्वमुखैर्निशेषं वक्तुमक्षमः ॥ ४८ ॥

अस्मिन्पद्ये अशेषमेकत्र पुनरशब्दान्तरे निश्शेषं एकार्थं वाचिपदद्वयं
...नभाति मन्मतेतु यथा षण्मुखैः कार्तिकेयो वक्तुमशक्यस्तथैव शेषोपि
...थै स्सहस्र मुखैर्वक्तुमशक्य इतिभावद्योतनार्थं निश्शेषमितिस्थलेसहस्रै
...पाठोभवेत्तदा साधु पाठ इति तेन ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यमहं षण्मुखैर्वक्तुंनशक्यो स्मि मम का ...
... सहस्रैस्स्वमुखैरशेषं वक्तुमक्षम इति स्कन्दोक्ति स्समीचीना ॥ ...

स्कन्दजी कहते हैं कि मैं अपने ६ मुखों से इस तीर्थ के माहा...
...हीं कह सक्ता, तो मेरी क्या गिन्ती है जबकि साक्षात् शेष भी अप...
...मुखों से इस के पूर्ण माहात्म्य को कहने में असमर्थ है ॥४८...

...पि शंसती कर्तुं जिह्वा मामभिधासति ॥
...रत्नस्य माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथामति ॥ ४९ ॥

...पि शंसतीकर्तुं शंसितुं जिह्वा मां अभिधासति प्रेरयति अतः
...स्य महात्म्यं प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि ॥ ४९ ॥

तथापि कथन करने के लिए मेरी जिह्वा मुझे प्रेरणा करती है इसलिए जैसी मेरी बुद्धि है तदनुकूल इस तीर्थ के माहात्म्य को मैं कहूँगा ॥ ४९ ॥

**एवं महाभाग! महीतले मलं विनाशयन्नभिवरं महोज्ज्वलम् ॥ विभाति यद्दर्शनतोऽपिमानवाः परम्पदं यान्ति विमान मानवाः ॥५०॥**

हे महाभाग ! महीतले एवं एतादृशं महोज्ज्वलं महादीप्तं तीर्थवरं मलं पापं विनाशयन् विभाति राजते यद्दर्शनतो यस्यदर्शनमात्रेण मानवाः साधारण मनुष्या अपि विमानयानवाहनन्तः अर्थाद्विमानगा सन्तः परम्पदं स्वर्गादि यान्ति ॥ ५० ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वीतल में इस प्रकार पाप को विनाश करता हुआ महोज्ज्वल यह तीर्थराज विराजमान है जिसके दर्शन मात्र से साधारण मनुष्य भी विमान पर आरूढ़ होकर परमधाम को चले जाते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।



मात्रे चाध्यात्मिकीम्विद्यां दत्वानुज्ञाप्य मातरं॥
स्वच्छन्दं तदनुज्ञातः प्रागुदीचींदिशंययौ ॥ ७ ॥

भगवान् कपिलः मात्रे देवहूत्यै आध्यात्मिकीं रूपिणीं विद्यां दत्वा चकारात् पुनर्मातरं अनुज्ञाप्य तस्यां विद्यायां नियुज्य तदनुज्ञातः मातुराज्ञया स्वच्छन्द दीचीं दिशं ययौ गतवान् ॥ ७ ॥

भगवान् कपिल माता देवहूती को अध्यात्म-विद्या उपदेश देकर उनकी आज्ञा लेकर स्वच्छन्दता से अर्थात् काम, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य्यादि से निवृत्त हो माया मोहादि सब सां बन्धनों को तोड़कर पूर्व उत्तर की दिशा में चले गये ॥ ७ ॥

गच्छन्पथिददर्शाग्रे समुद्रं वालुकामयम् ॥
तीर्थभूतं परंधाम धारिण्याननसंनिभम् ॥ ८ ॥

पथि मार्गे गच्छन् अग्रे तीर्थभूतं परंधाम उत्कृष्टं स्था धरिण्याः आनन सन्निभम् सदृशम् वालुकामयं समुद्रं ददर्श ॥ ८

मार्ग में जाते हुए कपिलजी ने आगे परमोत्तम स्थान, पृथ्वी मुख के सदृश वालुकामय समुद्र को देखा ॥ ८ ॥

नाना मृगगणाकीर्णं नाना वृक्षलतायुतम् ॥
नाना विहगसंघुष्टं नाना मुनि निषेवितम् ॥ ९ ॥

...। विचारयामास कपिलः श्रीनिकेतनः ॥
स्थानं परं दिव्यं तपसः सिद्धिदायकम् ॥ १० ॥

...त्य। संचकारेह तन्मनोहरतागुणान् ॥
... कल्पान्तं तप आस्थितः ॥ ११ ॥

तस्यां पुत्रः समभवत् कर्दमस्य प्रजापतेः ॥
श्रीविष्णोरंशसम्भूतः कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ ४ ॥

तस्यां स्वायंभुवसुतायां श्रीविष्णोरंशसम्भूतः परः पुमान् परमपुरुषः कपिलाख्यः भगवान्कपिलः प्रजापतेः कर्दमस्य पुत्रः समभवत् ॥ ४ ॥

उस स्वायंभुव मनु की पुत्री से प्रजापति कर्दमऋषी के पुत्र श्रीविष्णुभगवान् का अंश परमपुरुष भगवान् कपिल उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

स्व मात्रे देवहूत्यैयः सांख्यं योगं सविस्तरम् ॥
प्रोवाच जगदुद्धारकारकं करुणाकरः ॥ ५ ॥

यः करुणाकरः कृपालुः भगवान्कपिलः स्वकीये अत्यल्पे-वयसि स्वमात्रे देवहूत्यै जगदुद्धारकारकं सांख्यंयोगं च सविस्त-रं प्रोवाच उपदिष्टवान् ॥ ५ ॥

जो करुणाकर भगवान् कपिलजी ने अपनी थोड़ी अवस्था में ही अपनी माता देवहूती को संसारोद्धारकारक सांख्य और योग का उपदेश दिया ॥ ५ ॥

गुणाँस्तस्य त्वसंख्येयान्नवाङ्मनसगोचरान् ॥
वेदोन वक्तुं शक्तः स्यात्किमुतान्योविपश्चितः ॥ ६ ॥

हि यतस्तस्य कपिलस्य अवाङ्मनसगोचरानसंख्येयान् गुणान् वेदो वक्तुं न शक्तः स्यात् अतोन्ये विपश्चितोविद्वान्सः किमुत कथं वक्तुं समर्था भविष्यन्ति "यद्यशाचां गति र्नास्ति मनसश्चापि तादृशी । एवं भूतान् गुणान्वक्तुं वेदोपिनभवेद्क्षम्" ६॥

(६) कपिल के मनवचनातीत असंख्य गुणों को वेद
भी विद्वानों की क्या कथा है कहने के

# तृतीयाध्यायकथारंभः।

(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनस्तस्मात् महिमानमथादितः ॥
कपिलायतनतीर्थस्य पार्वतीनन्दनो मुनिः ॥ १ ॥

अथ पार्वतीनन्दनो मुनिः स्कन्द इत्येवमुक्त्वा कपिलायत तीर्थस्य महिमानमादितः पुनरेवाह कथयामास ॥ १ ॥

इस प्रकार पार्वतीनन्दन स्कन्दजी ने पूर्वाध्याय की कथा कह पुनः कपिलायतन (कोलायत) तीर्थ की महिमा को आदि से कहना आरंभ किया ॥ १ ॥

शृणु द्विज ! यथैवेदं तीर्थं कापिलसंज्ञकम् ॥
उद्धारं पातकारण्यदावानलसमप्रभम् ॥ २ ॥

हे द्विज ! पातकारण्य दावानलसमप्रभम् यथैवेदं कापिलसंज्ञकम् तीर्थमस्ति तथैवास्योद्धारमपित्वं शृणु ॥ २ ॥

हे द्विज ! पापरूपी वन को भस्म करनेवाले दावानल (वनाग्नि) के समान जैसा यह कपिलतीर्थ है उसी प्रकार इसका उद्धार भी मैं कहता हूं, सुनो ! ॥ २ ॥

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्रः कर्दमोऽभूत्प्रजापतिः ॥
तस्य स्वायंभुवसुता पत्न्यासीन्नियतव्रता ॥ ३ ॥

(सृष्ट्यादावितिस्पष्टार्थं पद्यम्)

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के पुत्र कर्दमऋषि प्रजापति हुए उनकी स्त्री स्वयंभू मनु की पुत्री हुई जो नियतव्रता अर्थात् स्त्रियों के जो पतिव्रतादि धर्म हैं उसको पालन करनेवाली थी ॥ ३ ॥

**तस्यां पुत्रः समभवत् कर्दमस्य प्रजापतेः ॥**
**श्रीविष्णोरंशसम्भूतः कपिलाख्यः परः पुमान ॥ ४ ॥**

तस्यां स्वायंभुवमनुपुत्र्यां श्रीविष्णोरंशसम्भूतः परः पुमान परमपुरुषः कपिलाख्यः भगवान्कपिलः प्रजापतेः कर्दमस्य पुत्रः समभवत् ॥ ४ ॥

उस स्वायंभुव मनु की पुत्री ने प्रजापति कर्दमजी के पुत्र श्रीविष्णुभगवान् का अंश परम पुरुष भगवान कपिल उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

**स्व मात्रे देवहूत्यै यः सांख्यं योगं सविस्तरम् ॥**
**प्रोवाच जगदुद्धारकारकं करुणाकरः ॥ ५ ॥**

य करुणाकर कृपालुः भगवान्कपिलः स्वकीये अल्पवये-
स्यपि स्वमात्रे देवहूत्यै जगदुद्धारकारकं सांख्ययोगं च सविस्त-
रं प्रोवाच उपदिष्टवान् ॥ ५ ॥

जो करुणाकर भगवान् कपिलजी ने अपनी थोड़ी अवस्था में ही अपनी माता देवहूती को संसारोद्धारक सांख्य और योग का उपदेश दिया ॥ ५ ॥

**गुणांस्तस्य ह्यनन्तस्य [illegible] ॥**
**वेदोऽपि वक्तुं शक्तः स्यात्किमुतान्येऽविपश्चितः ॥ ६ ॥**

हि तस्य कपिलस्य [illegible] गुणान् वेदो वक्तुं न शक्तः स्यात् तर्ह्यन्ये विपश्चितोऽविपश्चितः किमुत कथं वक्तुं समर्था भविष्यन्ति "यदवाप्य दापि नाति मनसस्यापि वाचो। [illegible]" इति ॥ ६ ॥

उन महात्मा कपिल के अनन्त [illegible] गुणों को वेद भी नहीं कह सकता [illegible] [illegible] [illegible] वर्णन कर सकेंगे ॥ ६ ॥

माते चाध्यात्मिकीम्विद्यां दत्त्वानुज्ञाप्य मातरं॥
स्वच्छन्दं तदनुज्ञातः प्रागुदीचींदिशंययौ॥ ७॥

भगवान् कपिलः मात्रे देवहूत्यै आध्यात्मिकीं सांख्यपिर्थां विद्यां दत्त्वा चकारात् पुनर्मातरं अनुज्ञाप्य तस्यां विद्यायां नियुज्य तदनुज्ञातः मातुराज्ञया स्वच्छन्दं दीचीं दिशं यथौ गतवान्॥ ७॥

भगवान् कपिल माता देवहूती को अध्यात्म-विद्या का उपदेश देकर उनकी आज्ञा लेकर स्वच्छन्दता से अर्थात् काम, क्रो लोभ, मोह, मद, मात्सर्य्यादि से निवृत्त हो माया मोहादि सब सांसारि बन्धनों को तोड़कर पूर्व उत्तर की दिशा में चले गये॥ ७॥

गच्छन्पथिददर्शाग्रे समुद्रं वालुकामयम्॥
तीर्थभूतं परंधाम धरिण्याननसंनिभम्॥ ८॥

पथि मार्गे गच्छन् अग्रे तीर्थभूतं परंधाम उत्कृष्टं स्थानं धरिण्याः आनन सन्निभम् सदृशम् वालुकामयं समुद्रं ददर्श॥ ८॥

मार्ग में जाते हुए कपिलजी ने आगे परमोत्तम स्थान, पृथ्वी के मुख के सदृश वालुकामय समुद्र को देखा॥ ८॥

नाना मृगगणाकीर्णं नाना वृक्षलतायुतम्॥
नाना विहगसंयुक्तं नाना मुनि निषेवितम्॥ ९॥

दृष्ट्वा विचारयामास कपिलः श्रीनिकेतनः॥
इदं स्थानं परं दिव्यं तपसः सिद्धिदायकम्॥ १०॥

युक्त्वा संचकारेदं तन्मनोहरतागुणम्॥
...नुग्रहार्थं कल्पान्तं तप आस्थितः॥ ११॥

## ( मङ्गलार्थानीमानि पद्यानि )

श्रीनिकेतन भगवान् कपिलजी अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त, अनेक प्रकार के वृक्ष लताओं से युक्त, विविध पक्षियों से कूजित और मुनिगणों से सेवित इस वालुकामय सामुद्रिक प्रदेश को देख कर विचारने लगे और तपस्या की सिद्धि देनेवाला परमरम्य यह स्थान है ऐसा कह कर उसकी मनोहरताई से आकर्षित होकर संसार के अनुग्रह की कामना से कल्पान्त तपस्या करने के लिए बैठ गये ॥ ९, १०, ११ ॥

**एकया चाथमूर्त्याच प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥**
**ततस्तद्भुवनख्यातं कपिलालयनामकम् ॥ १२ ॥**

महात्मा कपिलो नहि पूर्णांशेन तत्रावतिष्ठत् अंशेन तत्र कल्पान्तं तपसिस्थितः अंशेनैकामन्यांमूर्तिं विधाय तयैकयामूर्त्या पूर्वसंकल्पितां प्रागुदीचीं दिशं ययौ अतो भुवने लोके तद् स्थानं कपिलालयनामकं ख्यातं प्रसिद्धम् ॥ १२ ॥

भगवान कपिलजी अपनी पूर्ण कला से उस वालुकामय प्रदेश में कल्पान्त तपस्या करने नहीं बैठे किन्तु एक मूर्ति से वहाँ कल्पान्त तप करने के लिये बैठे और दूसरी मूर्ति अंशात्मिका धारण कर अपने पूर्व संकल्पित पूर्वोत्तर दिशा को गये इसलिए तबसे यह स्थान कपिलालय नाम से संसार में विख्यात हुआ ॥ १२ ॥

**तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कथं वक्तुमहंक्षमः ॥**
**सिद्धेशाधिष्ठितं यस्मात्कलिकालमलापहम् ॥ १३ ॥**

यस्मात्कारणात्सिद्धेशेन भगवता कपिलेनाधिष्ठितं तत्तीर्थं कलिकालमलापहमस्ति अतस्तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं वर्णयितुमहं कथं क्षमः समर्थ इति ॥ १३ ॥

सिद्धेश (भगवान् कपिल मुनि) का निवासस्थान जिस विशेषता से कलिकाल के पापों का नाश करनेवाला है उस तीर्थ के महात्म को यथावत् वर्णन करने में मैं असमर्थ हूं ॥ १३ ॥

नारायणाश्रमं पुण्यं यथा बदरिकाश्रमम् ॥
जाङ्गलेऽस्मिन्महापुण्यं तथेदं कपिलाश्रमम् ॥ १४ ॥

( स्पष्टार्थः )

जैसे नारायणाश्रम बदरिकाश्रम पवित्रधाम है वैसे इस जांगलिक देश में यह कपिलाश्रम महापवित्र स्थान है ॥ १४ ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं पितामह ॥
तथापि वर्णयेऽहं ते किंचित्किंचित्समासतः ॥ १५ ॥

अस्मिन्देशे कपिलाश्रमस्य वर्णनातीतं महत्त्वं ... यथा- ... तीर्थस्य माहात्म्यं ... वक्तुंनालं नहि समर्थः ... ऽप्यहं ते तुभ्यं समासतः संक्षेपतः किंचित्किंचिद्वर्णये ॥ १५ ॥

इस तीर्थ के माहात्म्य को मेरे पिता भी वर्णन करने में समर्थ ... हैं तथापि मैं तुम्हारे लिये संक्षेप से कुछ २ वर्णन करता हूं ॥ १५ ॥

... तीर्थे गन्तुमना यदा भवति मानवः ॥
... तस्य पापानि नृत्यन्ति ... ॥ १६ ॥

... तीर्थे यदा गंतुमना भवति तदैव तस्य पापा...
... निश्चयार्थकोऽन्वयः ॥ १६ ॥

... तीर्थ में जाने की इच्छा करता है ...
... उसके ... पाप ...

निर्गच्छति नरो [illegible] ॥
धूतानि पापजातानि तस्य,नश्येव नन्वसंशयः ॥ १७ ॥

( भाषार्थः )

हे तपोधन ! जब प्रेमपूर्ण तीर्थ स्नान करने जाने के लिये मनुष्य अपने गृह से बाहर होता है तब उसके सब पाप समूह धूत ( नष्ट ) हो जाते हैं इस में संशय नहीं ॥ १७ ॥

एतत्तीर्थस्य सीमायां नविशेत्पापपूरुषः ॥
ततोयं निर्मलो भूत्वा तीर्थं सीमां प्रपश्यति ॥ १८ ॥

( स्पष्टम् )

पापी पुरुष इस तीर्थ की सीमा में न प्रवेश करे इसलिये सीमा से पहले ही उस के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह निष्पाप होकर तीर्थ सीमा को देखता है ॥ १८ ॥

मासंशयिष्ठा मनसि सिद्धेशाधिष्ठितांभुवम् ।

सिद्धेशाधिष्ठितां भुवम् मनसि मा संशयिष्ठाः ।

सिद्धेश भगवान् कपिल मुनि की यह तपोभूमि है इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना ।

योयं कर्तुमकर्तुम्वा ह्यन्यथा कर्तुमीश्वरः ॥ १९ ॥
तस्येयं तपसोभूमिः सर्वदेवैरधिष्ठिता ॥

माहात्म्य श्रवणे चास्या नैव कार्या विचारणा ॥ २० ॥

योयं भगवान्कपिलः इति निश्चयेन कर्तुमकर्तुम्वान्यथा कर्तुमीश्वरः समर्थः तस्येयं सर्वदेवैरधिष्ठिता तपसोभूमिः अस्या माहात्म्यश्रवणे च विचारणा नैव कार्य्या यतःश्रवणेपि पुण्या [illegible]शुद्धमितिभावः ॥ २० ॥

जो भगवान् कपिल संसार को असंभव और असंभव को संभव अथवा अन्य प्रकार से ही कोई विशेष रचना कर सकने में समर्थ उन्हीं सिद्धेश्वर की यह तपोभूमि है जो सब देवताओं से सेवित है इस के माहात्म्य सुनने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिये क्योंकि कपिलायतन तीर्थ पर जाना और स्नान ध्यान करना तो अनिवार्य कार्य है ही परन्तु इसकी कथा के श्रवण मात्र से भी अनन्त पुण्य का लाभ होता है ॥ २० ॥

कलिकालविमूढैर्हि विष्णुमायाविमोहितैः ॥
सर्वतीर्थललामं तद्गन्तुं नैवाप्यशक्यते ॥ २१ ॥

पूर्वश्लोके माहात्म्यश्रवणमुक्तंतद्धेतुं दर्शयति कलिकालेति हि यतः विष्णुमायाविमोहितैः कलिकालविमूढनरैः सर्वतीर्थललामं सर्वतीर्थशिरोरत्नं तत्तीर्थं गन्तुं नैवशक्यते अतस्तन्माहात्म्यश्रवणमेवतैः कर्तव्यमितिभावः ॥ २१ ॥

(१) कपिलायतन तीर्थ बीकानेर राज्य की राजधानी में इसी राज्य के स्थापन काल से पूर्व ही प्राचीनकाल से विद्यमान चला आरहा है। जिस स्थान पर इस तीर्थ की शुभ उपस्थिति है वह उक्त राज की राजधानी से पहले एक ऐसी भयंकर दशा में था कि जहां पर प्रत्येक सर्वसाधारण-जन का जा सकना अति दुर्लभ था। क्योंकि यह एक निर्मल एवं निर्जन-स्थान था। इसके निकट में न तो कोई ग्राम था और न कोई नगर। जंगली आदमी तथा हिंसक जानवरों का ही यहां पर अधिकतर निवास था। कभी कोई यात्री यह भी साधु सन्यासी अथवा योगी जिनको अपने दुःख-सुख व जीवन-मरण का कुछ भी विचार नहीं होता था यहां आने का साहस करते थे।

जब से बीकानेर राज्य की राजधानी हुई है तब से यहां के गौ-ब्राह्मण-भक्त साधु सन्यासियों के परम श्रद्धालु, तीर्थप्रेमी, महापराक्रमी व पुण्यशील शासक नरेशों ने अपने पूर्ण अधिकार शक्ति के साथ २ शनैः २ इस पवित्र कपिलायतन पुण्य-स्थान के लिये भी सचेष्टा करनी प्रारंभ करदी। और इस समय वर्तमानकाल में तो परमात्मा की कृपा से हमारे धीर, वीर, प्रजा वत्सल, गो ब्राह्मण-भक्त, पुण्यशील महाराजाधिराज राजराजेश्वर नरेन्द्रशिरोमणि मेजर-जनरल हिज-हाइनेस महाराजा श्री १०८ श्री सर गंगासिंहजी बहादुर, जी.सी.एस.आई., जी.सी.आई.ई., जी.सी.वि.ओ., जी.बी.ई. के.सी.बी., ए.-डी.-सी., एल.एल.डी., के शासन में जब तक श्रीमान् बहादुर की छत्रछाया

इस तीर्थ के महात्म्य को श्रवण करने में भी आलस्य नहीं रना चाहिये इसका हेतु कहते हैं कि श्रीविष्णुभगवान् की माया से त मूढ़नर इस कलिकाल में सब तीर्थों के शिरोरत्न कपिलाश्रम हीं जा सकते हैं। इसलिये उनको इसका माहात्म्य श्रवण ही री होगा॥ २१॥

नामश्रवणाद्वचनोच्चारणादपि॥
पापानि हिमानिव तपोन्तिके॥ २२॥

त्र महात्म्यश्रवणफलं दर्शयति यथा तीर्थस्य कपि- नश्रवणात् वचनेन तन्नामोच्चारणादपि तपोन्ति के हतिरिव पापानि विलयं नाशं यान्ति अर्थात् केवल ारणाद्वा पापानां नाशस्तदा सम्यग् महात्म्यश्रवणस्य दर्थम्॥ २२॥

भगवान् स्कन्ददेव माहात्म्यश्रवण का फल बताते हैं कि नाम श्रवण से या नामोच्चारण से ही ग्रीष्म ऋतु में मान पापराशि विलय को प्राप्त होती है। जब नाम श्रवण से में यह फल होता है तो समग्र माहात्म्य श्रवण पात है॥ २२॥

स्थान का मह[illegible] पूर्व[illegible] में [illegible] है। यहां पर [illegible] के प्रकार के मन्दिर [illegible] [illegible] [illegible] एक [illegible] [illegible] और से [illegible] [illegible] हैं और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

जो भगवान् कपिल संभव को असंभव और असंभव को संभव अथवा अन्य प्रकार से ही कोई विशेष रचना कर सकने में समर्थ हैं उन्हीं सिद्धेश्वर की यह तपोभूमि है जो सब देवताओं से सेवित है इस के माहात्म्य सुनने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिये अर्थात् कपिलाश्रम तीर्थ पर जाना और स्नान ध्यान करना तो अतिपुण्य कार्य है ही परन्तु इसकी कथा के श्रवण मात्र से भी अनन्त पुण्य का लाभ होता है ॥ २० ॥

**कलिकालविमूढैर्हि विष्णुमायाविमोहितैः ॥**
**सर्वतीर्थललामं तद्गन्तुं नैवात्रशक्यते ॥ २१ ॥**

पूर्वश्लोके माहात्म्यश्रवणमुक्तंतद्धेतुं दर्शयति कलिकालेति हि यतः विष्णुमायाविमोहितैः कलिकालविमूढनरैः सर्वतीर्थललामं सर्वतीर्थशिरोरत्नं तत्तीर्थं गन्तुं नैवशक्यते अतस्तन्माहात्म्यश्रवणमेवतैः कर्तव्यमितिभावः ॥ २१ ॥

---

( १ ) कपिलायतन तीर्थ बीकानेर राज्य की राजधानी में इसी राज्य के स्थापना काल से पूर्व ही प्राचीनकाल से विद्यमान चला आरहा है। जिस स्थान पर इस तीर्थ की शुभ उपस्थिति है वह उक्त राज की राजधानी से पहले एक ऐसी भयंकर दशा में था कि जहांपर प्रत्येक सर्वसाधारण मन का जा सकना अति दुर्लभ था। क्योंकि यह एक निर्जल एवं निर्जन-स्थान था। इसके निकट में न तो कोई ग्राम था और न कोई नगर। जंगली आदमी तथा हिंसक जानवरों का ही यहां पर अधिकतर निवास था। कभी कोई यात्री वह भी साधु सन्यासी अथवा योगी जिनको अपने दुःख-सुख व जीवन-मरण का कुछ भी विचार नहीं होता था यहां आने का साहस करते थे।

जब से बीकानेर राज्य की राजधानी हुई है तब से यहां के गौ-ब्रह्म-भक्त साधु सन्यासियों के परम श्रद्धालु, तीर्थसेवी, महापराक्रमी व पुण्यशील शासक नरेशों ने अपने पूर्ण अधिकार प्राप्ति के साथ २ शनै २ इस पवित्र कपिलायतन पुण्य-स्थान के लिये भी सचेष्टा करनी आरंभ कर दी। और इस समय वर्तमानकाल में तो परमात्मा की कृपा से हमारे धीर, वीर, प्रचुर प्रतापी, गौ-ब्रह्म-भक्त, पुण्यशील महाराज धिराज राजराजेश्वर नरेन्द्रशिरोमणि मेजर-जनरल हिज-हाइनेस महाराजा श्री १०८ श्री सर गंगासिंहजी बहादुर, जी-सी.एस.आई., जी-सी.आई-ई., जी.सी-वी.ओ., जी.बी.ई., के.सी.बी., ए.-डी.-सी., एल.एल.डी., ई.श्वरानुग्रहीत जय जंगलधर बादशाह की परमअनुकम्पा*

होंगे और थोड़े परिश्रम से ही अत्यधिक पुण्य का लाभ होने से इसी तीर्थ में स्नान कर और इसी तीर्थ के देवता का ध्यान कर अपनी २ अभीप्सित गति को प्राप्त करलेंगे इसलिए और तीर्थ तथा देवताओं का प्रभाव कम हो जायगा। परन्तु परमकरुणाकर लोकानुग्रहकारी भगवान् स्कन्ददेव ने कलियुग के वास्ते इस गुप्त तीर्थ को प्रकट कर दिया। इसी प्रकार अर्थात् जैसे कि सत्ययुग में कपिलाश्रम प्रसिद्ध था वैसाही त्रेता में प्रयाग प्रसिद्ध हुआ और द्वापर में पुष्करराज की प्रसिद्धि हुई परन्तु कलियुग में कपिलतीर्थ गुप्त होने से गंङ्गा ही का केवल महात्म्य रहा। इस प्रकार युगक्रम से पृथ्वी में तीर्थों की प्रसिद्धि हुई॥ २४, २५॥

सर्वतीर्थफलावाप्तिकारणं परमास्त्विदम्॥
तावत्प्रभा तारकाणां यावत्सूर्यो न दृश्यते॥ २६॥
तावन्ति सर्वतीर्थानि यावद्देतन्नमन्यते॥

परमसुत्कृष्टमिदं कपिलतीर्थन्तु सर्वतीर्थफलावाप्तिकारणम् अत्र दृष्टान्तोयथा यावत्सूर्योनदृश्यते अर्थात्सूर्योदयोनभवति तावत्तारकाणामल्पप्रभाप्रदातॄणां नक्षत्राणां प्रभा जागर्ति तथैव यावदेतत्तीर्थनमन्यते तावन्ति सर्वतीर्थानीति, अर्थात्मन्यमानेऽस्मिन्तीर्थे शेषाणां सर्वेषां तीर्थानाम्प्रभावोऽल्पतमोभवतीति॥

यह उत्तम तीर्थ सब तीर्थों के फल प्राप्ति का हेतु है, यहां एक दृष्टान्त है कि जबतक सूर्योदय नहीं होता तबतक ही अल्प प्रकाशक लघु तारों की उज्ज्वलता आकाश में व्याप्त रहती है और सूर्योदय होतेही सब तारागण मन्द हो जाते हैं वैसे ही जब तक इस तीर्थ का ज्ञान नहीं होता तभी तक और सब तीर्थों का महत्व प्रचालित रहता है इस तीर्थराज के महत्व का ज्ञान होनेही सब तीर्थों का महत्व मन्द होजाता है॥

पापौघहरणं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
रदं सर्वयज्ञानां महादानफलप्रदम् ॥ २३ ॥

( स्पष्टार्थोयम् )

ह तीर्थ सब पापराशियों को हरण करता है, सब तीर्थों का
ता है, सब यज्ञों का पुण्य देनेवाला है, और सब महादानों का
नेवाला है ॥ २३ ॥

सत्ययुगे ख्यातं कलौदेवैः सुगोपितम् ॥
यान्तु प्रयागाख्यं तीर्थं ख्यातं धरातले ॥ २४ ॥
पुष्करं नाम कलौ गङ्गैवकेवलम् ॥
युगानुरोधेन सन्ति तीर्थानि भूतले ॥ २५ ॥

दं कपिलाश्रमं सत्ययुगे ख्यातं प्रसिद्धमासीत् कलौ देवैः
तम् सुगोप्यरक्षितम् ॥ कलौ कायक्लेशादिकठिनतपसामा-
समर्थाजनाः स्वल्पायासेन बहुपुण्यलाभादत्रैव गत्वास्नात्वा
त्वा स्वांस्वामभीप्सितां गतिं यास्यन्त्यतोऽन्येषां तीर्थानां
य प्रभावोल्पतमोभविष्यतीतिबुद्धयैवदेवैः सुगोपितमिति-
। पुनः कलियुगे गुप्तमपितत्तीर्थं परमकारुणिकेन
ग्रहकारिणा भगवता स्कन्देन प्रकटीकृतमिति ॥ एवं
। कपिलतीर्थस्य प्रसिद्धयनन्तरं त्रेतायान्तु प्रयागाख्यं
ख्यातं स्वांप्रसिद्धिमगात्ततो द्वापरे पुष्करन्नाम तीर्थं प्रसिद्धम् ॥
कपिलतीर्थस्य गुप्तत्वात्केवलं गङ्गैव स्वांप्रख्यातिंगता ।
गानुरोधेन भूतले तीर्थानि सन्ति ॥ २४, २५ ॥

ह कपिलाश्रम सत्ययुग में प्रसिद्ध हुआ था परन्तु कलियुग में
ों ने गुप्त कर दिया इनका आशय यही हो सकता है कि कलियुग
शरीर को क्लेश देकर कठिन तपस्याओं को करने में असमर्थ

अथ किञ्चित्तु महिमा तवाग्रेवर्ण्यते मया ॥ २७ ॥
सकलो वेदविदुषां यतोवाचामगोचरः ॥

अथ तवाग्रेतु मया किंचिन्महिमा वर्ण्यते ॥ २७ ॥ यतः सकलः सम्पूर्णमहिमा वेदविदुषां वेदविदामपिवाचामगोचरः वेदविदोपिवक्तुमसमर्था इति भावः ॥

अब तुम्हारे सन्मुख इस तीर्थ की महिमा का कुछ वर्णन मैं करता हूं ॥ २७ ॥ क्योंकि समग्र वर्णन वेदविज्ञाता भी नहीं कर सकते ॥

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ २८ ॥
तदेकेन दिनेनैव जायते वसतामिह ॥

अन्यत्रान्यस्मिन्तीर्थे नृणां दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते ॥२८॥ इहवसतां तेषां तदेकेनैव दिनेन जायते ॥

और सब तीर्थों का १० वर्ष सेवन करने से जो फल मनुष्य प्राप्त करते हैं वह यहां एक दिन के सेवन से ही प्राप्त होजाता है ॥

अविमुक्ते ज्ञानदान्मुक्तिः पुंसां प्रजायते ॥ २९ ॥
ज्ञानाद्विनाप्यत्र मुक्तिः प्राप्यते नियतं नरैः ॥

अविमुक्ते वाराणस्यां ज्ञानदानात्पुंसां मुक्तिः प्रजायते ॥२९॥ अत्र कपिले तीर्थे ज्ञानाद्विनापि नरैर्नियतं निश्चयेन मुक्तिः प्राप्यते ॥

अविमुक्त वाराणसी [illegible]
की मुक्ति होती है "
है इसका भाव
ज्ञान देकर [illegible]
मानस में [illegible]
मुक्ति [illegible]

विना मुक्ति नहीं होती इस श्रुति का व्यभिचार होजाता । परन्तु इस कपिलतीर्थ में ज्ञान बिना ही मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥

मुक्तिभूमिरियं नित्या यज्ञभूमिरियं परा ॥ ३० ॥
योगभूमिरियं शुद्धा कामिनां भोगभूमिका ॥
महापातकयुक्तानां पापिनां पापमोचिका ॥ ३१ ॥
सदाचाररतां पुंसां परमास्वर्गभूमिका ॥
जपानुष्ठाननिष्ठानां जपसिद्धिकरी सदा ॥ ३२ ॥
तपस्विनां महाभाग ! तपस्सिद्धिप्रदायिनी ॥
भगवद्भक्तिकामानां महाभक्तिकरीपरा ॥ ३३ ॥
कासाहो कामना लोके यात्र न प्राप्यते नरैः ॥
सांख्ययोगमयीभूमिः सांख्याचार्याश्रितायतः ॥ ३४ ॥

( स्पष्टार्था इमे श्लोकाः )

हे महाभाग ! इस कपिलतीर्थ की यह भूमि नित्या अर्थात् अनपायिनी मुक्ति को देनेवाली परा उत्तमा यज्ञभूमि शुद्धा योगभूमि और विलासियों की भोगभूमि है एवं महापातकियों के पापों का नाश करने वाली है तथा सदाचारियों की परमा स्वर्गभूमि है जपानुष्ठान में निष्ठ मनुष्यों के जप मन्त्र की सिद्धि करनेवाली, तपस्वियों के तप की सिद्धि देनेवाली है, और भगवद्भक्तिकामनावालों को परा भक्ति देने वाली है कौन सी ऐसी कामना है जिसको यहां मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता ? यह सांख्याचार्य कपिलमुनि की आश्रयभूमि है इसलिये सांख्ययोगमयी है ॥ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥

अत्र सद्गुरुणा मोक्षं विना ज्ञानमवाप्यते ॥
नित्या मित्यविवेकोऽपि तीर्थस्यास्य प्रसादतः ॥ ३५ ॥

अथ किञ्चित्तु महिमा तवाग्रेवर्ण्यते मया ॥ २७ ॥
सकलो वेदविदुषां यतोवाचामगोचरः ॥

अथ तवाग्रेतु मया किंचिन्महिमा वर्ण्यते ॥ २७ ॥ यतः सकलः सम्पूर्णमहिमा वेदविदुषां वेदविदामपिवाचामगोचरः वेदविदोपिवक्तुमसमर्था इति भावः ॥

अब तुम्हारे सन्मुख इस तीर्थ की महिमा का कुछ वर्णन मैं करता हूं ॥ २७ ॥ क्योंकि समग्र वर्णन वेदविज्ञाता भी नहीं कर सकते ॥

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ २८ ॥
तदेकेन दिनेनैव जायते वसतामिह ॥

अन्यत्रान्यस्मिन्तीर्थे नृणां दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते ॥२८॥ इहवसतां तेषां तदेकेनैव दिनेन जायते ॥

और सब तीर्थों का १० वर्ष सेवन करने से जो फल मनुष्य प्राप्त करते हैं वह यहां एक दिन के सेवन से ही प्राप्त होजाता है ॥

अविमुक्ते ज्ञानदान्मुक्तिः पुंसां प्रजायते ॥ २९ ॥
ज्ञानम्विनाप्यत्र मुक्तिः प्राप्यते नियतं नरैः ॥

अविमुक्ते वाराणस्यां ज्ञानदानात्पुंसां मुक्तिः प्रजायते ॥२९॥ अत्र कपिले तीर्थे ज्ञानम्विनापि नरैर्नियतं निश्चयेन मुक्तिः प्राप्यते ॥

अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र में श्रीविश्वनाथ के ज्ञानोपदेश से मनुष्य की मुक्ति होती है " काश्याम्मरणान्मुक्तिः " यह जो प्रख्यात वाक्य है इसका भाव यह है कि काशी में मरनेवाले को भगवान् शंकर जी ज्ञान देकर मुक्त कर देते हैं गोस्वामी तुलसीदासजी भी अपने रामचरितमानस में लिखते हैं कि " महामंत्र जेहि जपत महेशू। काशी मरण मुक्ति उपदेशू।" अन्यथा " ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः " अर्थात् ज्ञान

तो मुक्ति नहीं होती इस श्रुति का व्यभिचार होजाता। परन्तु इस कपिलतीर्थ में ज्ञान बिना ही मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥

मुक्तिभूमिरियं नित्या यज्ञभूमिरियं परा ॥ ३० ॥
योगभूमिरियं शुद्धा कामिनां भोगभूमिका ॥
महापातकयुक्तानां पापिनां पापमोचिका ॥ ३१ ॥
सदाचारवतां पुंसां परमास्वर्गभूमिका ॥
जपानुष्ठाननिष्ठानां जपसिद्धिकरी सदा ॥ ३२ ॥
तपस्विनां महाभाग ! तपस्सिद्धिप्रदायिनी ॥
भगवद्भक्तिकामानां महाभक्तिकरीपरा ॥ ३३ ॥
कासाहो कामना लोके यात्र न प्राप्यते नरैः ॥
सांख्ययोगमयीभूमिः सांख्याचार्याश्रितायतः ॥ ३४ ॥

( स्पष्टार्था इमे श्लोकाः )

हे महाभाग ! इस कपिलतीर्थ की यह भूमि नित्या अर्थात् अनपायिनी मुक्ति को देनेवाली परा उत्तमा यज्ञभूमि शुद्धा योगभूमि और विलासियों की भोगभूमि है एवं महापातकियों के पापों का नाश करने वाली है तथा सदाचारियों की परमा स्वर्गभूमि है जपानुष्ठान में निष्ठ मनुष्यों के जप यज्ञ की सिद्धि करनेवाली, तपस्वियों के तप की सिद्धि देनेवाली है, और भगवद्भक्तिकामनावालों को परा भक्ति देने वाली है कौन सी ऐसी कामना है जिसको यहां मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता ? यह सांख्याचार्य कपिलमुनि की आश्रयभूमि है इसलिये सांख्ययोगमयी है ॥ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥

अत्र सद्गुरुणा प्रोक्तं विना ज्ञानमवाप्यते ॥
नित्या मित्यविवेकोहि तीर्थस्यास्य प्रसादतः ॥ ३५ ॥

किम्यहूक्त्या मुनिश्रेष्ठ ! विदुषामग्रतः सदा ॥
एतादृक् पाप हृत्तीर्थं नभूतं न भविष्यति ॥ ३६ ॥

( स्पष्टार्थाविमौश्लोकौ )

इस तीर्थ में गुरु के उपदेश बिनाही सद्ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस तीर्थ के प्रसाद से संसार में क्या नित्य है ? क्या अनित्य है ? इसका भी विवेक हो जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! विद्वानों के सम्मुख बहुत कहने की आवश्यकता नहीं होती, सारांश यह है कि ऐसा पापहारी तीर्थ आजतक न हुआ न भविष्य में होगा ॥ ३५, ३६ ॥

समीरणोपि संमृज्य कपिलायतनाम्बुभिः ॥
नाधन्यं स्पृशते लोके नरं मूढं सकल्मषम् ॥ ३७ ॥
कपिलालय संयोगाद्यतोऽसौ पापहामतः ॥
तस्माद्विहाय पाप्मानं याति वायुस्त्वरान्वितः ॥ ३८ ॥

( स्पष्टार्थाविमौ )

वायु भी इस कपिलायतन के जल से संमार्जित होकर निन्दित तथा मूर्ख और पापयुक्त मनुष्य को स्पर्श नहीं करती ॥ ३७ ॥ क्योंकि कपिलालय के संयोग से वह पापनाशक हो जाता है इसलिए पापी मनुष्य को छोड़कर वेग से आगे चली जाती है ॥ ३८ ॥

कपिलालय संस्था ये प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥
सर्वे मुक्तिमवाप्स्यन्ति सत्यं जानीहि सत्तम ॥ ३९ ॥

( स्पष्टार्थः )

हे सत्तम ! कपिलालय में रहनेवाले जितने स्थिर और जंगम प्राणी हैं वे सब मुक्त हो जाते हैं इस बात को सत्य जानो ॥ ३९ ॥

इदं गोप्यं कृतं तीर्थं दिवौकोभिः पुरातने ॥
ततः केपिन जानन्ति विनाविष्णोः प्रसादतः ॥ ४० ॥

इदं तीर्थं पुरातने पूर्वस्मिन्काले दिवौकोभिः दिवमेवौकोगृहं येषान्तैः " द्योदिवौ द्वे स्त्रियामित्यमर. " ओकस्सद्मनिचाश्रयेचेत्यमरः। गोप्यं कृतं गोपितमित्यर्थः । ततआरभ्य विष्णोः प्रसादतो विनार्थाद्भगवत्कृपाविरहेण केपिनहि जानन्ति ॥ ४० ॥

इस तीर्थ को पूर्व समय में देवताओं ने गुप्त कर रक्खा था तब से विना विष्णुभगवान् की कृपा के कोई नहीं जानता है ॥ ४० ॥

**अस्मिन्स्थाने कृतं पुण्यं परार्द्धगुणितंभवेत् ॥**
**विना पापं हि विप्रेन्द्र! त्वयि गुह्यंमयोदितम् ॥ ४१ ॥**

हे विप्रेन्द्र ! अस्मिन् स्थाने तीर्थे कृतं पुण्यं विना पापं पापराहित्यं परार्द्धगुणितमसंख्यमितिभावः भवेत् । त्वयि मयेदं गुह्यं गुप्तमुदितम् ॥ ४१ ॥

हे विप्रवर ! इस स्थान में जो पुण्य किया जाता है वह निष्पाप परार्द्ध गुणित होता है अर्थात् असंख्य होता है यह बहुत गुप्त वस्तु है जिसको मैं तुमसे कहता हूं ॥

**तथापि नहि कर्त्तव्यं जानता पातकंक्वचित् ॥**
**श्रद्धया पापकरणं नहि वेदानुशासनम् ॥ ४२ ॥**

( स्पष्टार्थः )

तथापि जान कर कभी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि श्रद्धा से पाप करना वेदाज्ञा से विरुद्ध है ॥ ४२ ॥

**अस्मिन्तीर्थे कृतं पापमत्रलीनं न संशयः**
**जले जातं बुद्बुदकं जले लीनं यथा भवेत् ॥ ४३ ॥**

( स्पष्टार्थः )

जैसे जल से निकला हुआ बुद्बुदक ( फेन ) जल में ही लय होजाता है उसी प्रकार इस तीर्थ में किया हुआ पाप इसी तीर्थ में लय होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥

एष तीर्थस्य महिमा वचनागोचर उच्यते ॥
सतामासेव्यं सदा सद्भिर्नः पुण्यमनन्तकम् ॥ ४४ ॥

( स्पष्टार्थः )

इस तीर्थ की महिमा वचनातीत है अर्थात् अवर्णनीय है तथापि इतना कहूंगा कि इसके सेवन का अनन्त पुण्य है इसलिए सद्विचारवानों को सदा सेवन करना चाहिए ॥ ४४ ॥

सर्वदैवास्ति पुण्यमिदं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥
तत्रापि कार्तिकेमासि तत्रप्रान्त्येषु पञ्चसु ॥ ४५ ॥
दिनेषु सुमहापुण्यं कार्तिक्यां यत्पुनर्ब्रुवे ॥

( अयमपिस्पष्टार्थः सार्द्धश्लोकः )

ऐसे तो सदाही इस तीर्थ के सेवन का पुण्य है परन्तु चौमासे में सेवन करने का विशेष माहात्म्य है उनमें से भी कार्तिकमास में सेवन का फल अधिक होता है कार्तिक में भी अन्त्य के पांच दिनों ( भीष्मपंचक ) में बहुत ही अधिक पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ एवं कार्तिकी अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को जो फल होता है उसे पुनः कहता हूं ॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां यः स्नाति श्रीकपिलालये ॥ ४६ ॥
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं नालं वक्तुं शिवः स्वयम् ॥

( स्पष्टम् )

कार्तिक की पूर्णिमा के दिन श्री कपिलालयधाम में जो स्नान करता है उस पवित्र पुरुष के माहात्म्य को साक्षात् शिव [illegible] कह सकते और किसको कहूं ॥

**किम्प्रोक्तेन महादेव ! पुनरुक्तानया भृशम् ॥ ४७ ॥**
**कापिलस्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥**

(स्पष्टम्)

हे महादेव ! बारबार कही हुई बात को ही दुहराने में कुछ लाभ नहीं, मेरा कथन यही है कि कपिलालय में स्नान मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ ४७ ॥

**इदं मया ते किंचदेव वर्णितं तीर्थस्य माहात्म्यमनुत्तमं मुने॥ शेषोऽपि निरशेषतयास्य वर्णने विशेषशक्तिर्नहि जातु संभवेत् ॥ ४७ ॥**

हे मुने ! इदमनुत्तमं तीर्थस्य माहात्म्यं किंचदेव किंचिदेव तुभ्यं मया वर्णितम् अन्यथा शेषोऽपि जातु कदाचित् अस्य तीर्थमाहात्म्यस्य निरशेषतया वर्णने विशेषशक्तिर्नहिसंभवेत् यदि शेषोऽप्यसमर्थस्तदेतरस्य का कथेति ॥ ४८ ॥

हे मुने ! इस सर्वोत्तम तीर्थ माहात्म्य को तुमसे मैंने कुछ ही वर्णन किया है क्योंकि शेषजी की भी शक्ति नहीं कि वह इसको पूर्ण रीति से वर्णन कर सकें तो औरों की क्या कथा है ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दाख्यानककल्पादि कपिलायतनमाहात्म्ये
तीर्थवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।

# चतुर्थाध्यायकथारंभः।



( सूत उवाच )

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं स्कन्दः कुंभोद्भवं पुनः ॥
प्रत्युवाच कथाश्चित्रास्तीर्थमाहात्म्यसूचिकाः ॥ १ ॥

सूतश्शौनकादीन् श्रोतॄन् वदति-यत् स्कन्दः इतितीर्थ माहात्म्यमुक्त्वा पुनस्तीर्थमाहात्म्यसूचिकाश्चित्राः कथाः पुनः कुंभोद्भवमगस्त्यम्प्रत्युवाच ॥ १ ॥

सूत ऋषि अपने श्रोता शौनकादि ऋषियों से बोले कि भगवान् स्कन्द ने इस प्रकार तीर्थ माहात्म्य को कह कर पुनः इस तीर्थ की माहात्म्यसूचक विचित्र कथाओं को अगस्त्य ऋषि से कहा ॥ १ ॥

पुनर्मनः प्रत्ययार्थमितिहासानिमान्मुने ॥
शृणु त्वं सावधानः सन् श्रद्धानोविधानतः ॥ २ ॥

हे मुने ! पुनर्मनः प्रत्ययार्थं मनसः प्रतीतिलाभाय श्रद्धानः सावधानः सन्निमानितिहासान्विधानतस्त्वं शृणु ॥ २ ॥

हे मुनि ! पुनः अपने मन की प्रतीति वास्ते श्रद्धायुक्त और सावधान होकर इन इतिहासों को जिनको मैं आगे कहूंगा विधिपूर्वक तुम सुनो ॥ २ ॥

पुराकल्पे महाभाग तपस्विवरसद्मसु ॥
पद्कन्याः किलसंजाता रूपमाधुर्य्यसंयुता ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! पुराकल्पे अस्मात्कल्पात्पूर्वस्मिन्कल्पे तपस्वि वरसद्मसु रूपमाधुर्य्यसंयुताः किल षट्कन्याः संजाताः ॥ ३ ॥

तासान्तुद्धिरभूद्ब्रह्मन् संस्कारात्पूर्वजन्मनः ॥
इन्द्रियाणां हि दमने ब्रह्मचर्यस्य पालने ॥ १२ ॥
अष्टाङ्गयोगे विमले प्राणायामादिसाधने ॥
वैराग्यभावविभवे रागद्वेषविवर्जिते ॥ १३ ॥

( स्पष्टार्थाः )

हे ब्रह्मन् पूर्वजन्म के सद्वासना से इन्द्रियों के दमन करने में, ब्रह्मचर्य के पालन करने में, विमल अष्टाङ्गयोग के साधन और प्राणायामादि योगक्रिया के साधन में एवं रागद्वेष से रहित शुद्ध वैराग्य भाव में उन कन्याओं की प्रवृत्ति हुई ॥ १२, १३ ॥

एवं वृत्ताश्चिरं कालं गमयामासुरंजसा ॥
सुशीलाश्शुद्धमनसः पूर्वकर्मविपाकतः ॥ १४ ॥

पूर्वकर्मविपाकतस्ताः सुशीलाः शुद्धमनसो मुनिकन्या एवं पूर्वोक्तव्रतेन वृत्ता अंजसा चिरंकालं गमयामासुः ॥ १४ ॥

उन सुशील और शुद्ध चित्तवाली मुनिकन्याओं ने इसप्रकार व्रतों के आचरण में बहुत दिन व्यतीत कर दिये ॥ १४ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये समाजोऽभून्महात्मनाम् ॥
प्रयागे महातीर्थेन्द्रे माघे मकरगे रवौ ॥ १५ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये महातीर्थेन्द्रे प्रयागे मकरगे रवौ माघे महात्मनां समाजोऽभूत् ॥ १५ ॥

किसी समय माघ मास में जब मकर के सूर्य हुए तो तीर्थराज प्रयाग में देश देशान्तरों से आये हुए ऋषि मुनि महर्षि और तपस्वी इत्यादि महात्माओं का समाज एकत्र हुआ ॥ १५ ॥

**मिथोगायन्ति गीतानि सखियौशेरलेमिथः ॥**
**एवं तासां प्रीतिरभूत् पूर्वजन्मप्रभावतः ॥ ९ ॥**

( स्पष्टार्थी इमे श्लोकाः )

इस प्रकार रूप माधुर्यादि गुणों से युक्त वे कुमारिकायें परस्पर सखित्व भाव को प्राप्त हुईं। साथ साथ खेलतीं, साथ साथ बात करतीं, एक साथ घर को जातीं, परस्पर प्रेम के साथ एक दूसरी को खिलाती और खाती थीं एवं साथ साथ देवदर्शन को जाती थीं, साथ साथ नदी के जल में स्नान करने जाती थीं, एक साथ मिलकर सुन्दर २ मधुर गीतों को गाती थीं और एक साथ सोती थीं। इस प्रकार का परस्पर प्रेम उनको पूर्वजन्म के प्रभाव से हुआ था ॥ ६, ७, ८, ९ ॥

**सुरम्यं रममाणास्तास्तपस्विवरकन्यकाः ॥**
**मुग्धभावं परित्यज्य किंचिद्विदग्ध्यमागताः ॥ १० ॥**

तास्तपस्विवरकन्यका एवं सुरम्यं रममाणा मुग्धभावं परित्यज्य किंचिद्विदग्ध्यं विदग्धभावमागताः प्राप्ताः ॥ १० ॥

वे तपस्वियों की कन्याएं इस प्रकार सुरम्य बाल क्रीड़ा करती हुईं अपने मुग्ध भाव अर्थात् कैशोर अवस्था को त्याग कर विदग्धावस्था अर्थात् तरुणावस्था को प्राप्त हुईं ॥ १० ॥

**तासां नामानि वक्ष्यामि शृणुमे द्विजसत्तम ॥**
**मन्दा मन्दाकिनी मोदा नर्मदा शुभदा विदा ॥ ११॥**

( स्पष्टम् )

हे द्विजसत्तम ! उन कन्याओं के क्या नाम थे सो बताता हूं सुनो एक का नाम मन्दा, दूसरी का नाम मन्दाकिनी, तीसरी का नाम मोदा एवं चौथी पांचवीं के नाम क्रम से नर्मदा शुभदा और छटवीं का नाम विदा था ॥ ११ ॥

तासामभुद्धिरभूद्ब्रह्मन् संस्कारात्पूर्वजन्मनः ॥
इन्द्रियाणां हि दमने ब्रह्मचर्यस्य पालने ॥ १२ ॥
अष्टाङ्गयोगैर्विमले प्राणायामादिसाधने ॥
वैराग्यभावविभवे रागद्वेषविवर्जिते ॥ १३ ॥

( स्पष्टार्थाः )

हे ब्रह्मन् पूर्वजन्म के सद्वासना से इन्द्रियों के दमन करने में, ब्रह्मचर्य के पालन करने में, विमल अष्टाङ्गयोग के साधन और प्राणायामादि योगक्रिया के साधन में एवं रागद्वेष से रहित शुद्ध वैराग्य भाव में उन कन्याओं की प्रवृत्ति हुई ॥ १२, १३ ॥

एवं धृतताश्चिरं कालं गमयामासुरंजसा ॥
सुशीलाश्शुद्धमनसः पूर्वकर्मविपाकतः ॥ १४ ॥

पूर्वकर्मविपाकतस्तास्सुशीलाश्शुद्धमनसो मुनिकन्या एवं पूर्वोक्तव्रतेन धृत्वा अंजसा चिरंकालं गमयामासुः ॥ १४ ॥

उन सुशील और शुद्ध चरित्रवाली मुनिकन्याओं ने इसप्रकार व्रतों के आचरण में बहुत दिन व्यतीत कर दिये ॥ १४ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये समाजोऽभून्महात्मनाम् ॥
प्रयागे महतिक्षेत्रे माघे मकरगेरवौ ॥ १५ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये महतिक्षेत्रे प्रयागे मकरगेरवौ माघेमासि महात्मनांसमाजोऽभून् ॥ १५ ॥

किसी समय माघ मास में जब मकर के सूर्य हुए तो तीर्थराज प्रयाग में देश देशान्तरों से आये हुए ऋषि मुनि महर्षि और तपस्वी इत्यादि महात्माओं का समाज एकत्र हुआ ॥ १५ ॥

तत्र त्रैलोक्यसंस्थानास्सर्वे लोकास्समागताः ॥
देवा देवर्षयो देव्यो ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षयोऽमला ॥ १६ ॥
राजानश्च तथा मर्त्याः सर्वे सत्पुण्यमानसाः ॥
तत्रागत्य यथा काले सस्नुः प्रीताः सितासिते ॥ १७ ॥

( स्पष्टार्थौ )

हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्य में रहनेवाले सभी देवता, देवर्षि, देवियां, और ब्रह्मर्षि एवं राजालोग तथा साधारण मनुष्य सत्य और पवित्र मन से उस समाज में एकत्रित होकर सम्पूर्ण माघ मासभर उचित समय से प्रसन्नतापूर्वक स्नान करते रहे ॥ १६, १७ ॥

तत्रताः पूर्वमुदिता मुने ! षड्मुनिकन्यकाः ॥
स्नानार्थं समुपायाता स्तीर्थराजे जितेन्द्रियाः ॥ १८ ॥

हे मुने ! तत्र तस्मिंस्तीर्थराजे प्रयागे पूर्वमुदिताः पूर्वोक्ताः जितेन्द्रियास्ता षड्मुनिकन्यकाः स्नानार्थं समुपायाता आगतवत्यः ॥ १८ ॥

हे मुनि ! अपनी इन्द्रियों को वश में रखनेवाली ६ मुनिकन्याएं जिनकी चर्चा पहले कर आया हू वे भी उस तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने के लिए आईं ॥ १८ ॥

आगत्य विधिना सस्नुर्माघे मासि सितासिते ॥
सदा समाजम्पश्यन्त्यश्चेत् मीलितलोचनाः ॥ १९ ॥

आगत्य तत्र सितासिते शुक्लपक्षे कृष्णे पक्षे च समस्ते माघे मासि विधिना स्नाता एवं विषयादिभोगलिप्साराहिताः परब्रह्मणि सततं लीनत्वान्मीलितलोचनास्सदा [illegible] पश्यन्त्यश्चेतः ॥ १९ ॥

वहां आकर समस्त माघमासभर विधिपूर्वक स्नान करती रहीं और सतत परब्रह्म की चिन्तना करती हुईं तथा समाज को देखती हुईं भ्रमण करती रहती थीं ॥ १९ ॥

**दान जाप्य व्रत स्नान ध्यान योगादि तत्पराः ॥**
**मासमेकंजना स्सर्व्वे तत्र स्थितिमरोचयन् ॥ २० ॥**

( स्पष्टम् )

उस समाज में आये हुए सभी लोगों ने दान जप व्रत स्नान और ध्यान आदि कार्य्यों में तत्पर होकर एक मास पर्य्यन्त वहां रहने की इच्छा प्रकट की ॥ २० ॥

**कदाचिद्वरकन्यास्तास्समाजे महदन्तिके ॥**
**विष्णुगाथाः प्रगायन्तं प्रीत्यासुस्वरमुच्चकैः ॥ २१ ॥**
**आलिङ्ग्यमहतीम्वीणां सप्तस्वरविभूषिताम् ॥**
**वादयन्तम्मुदायुतं स्वरब्रह्मसुधालपम् ॥ २२ ॥**
**धुन्वानं निजमूर्द्धानं किशोरवयसान्वितम् ॥**
**ददृशुर्नारदं विप्र ! गानविद्या-विशारदम् ॥ २३ ॥**

हे विप्र ! महदन्तिके तस्मिन्समाजे विचरन्त्यस्ता वरकन्याः कदाचित् कस्मिंश्चित्समये प्रीत्या उच्चकैः उच्चस्वरेण सुस्वरं यथा भवति तथा विष्णुगाथाः भगवतोविष्णोर्गुणानुवादान् प्रगायन्तं सप्तस्वरविभूषिताम् सप्तभिर्निषादर्षभगान्धार षड्ज मध्यम, धैवत, पञ्चमेतिस्वरैः विभूषिताम् स्वकीयाम्महतीम्वीणामालिङ्ग्याङ्के निधाय मधुरालापम्ब्रह्मानन्दप्राप्तिकरं सुस्वरं मुहुर्मुहुर्वादयन्तं ताला-परपर्याये गानस्य काल क्रियामाने समागते निज मूर्धानं धुन्वानं गानविद्या विशारदं किशोरवयसान्वितम्मुदायुतं हर्षोल्लासितविग्रहं नारदं ददृशुः ॥ २१, २२, २३ ॥

तत्र त्रैलोक्यसंस्थानास्सर्वे लोकास्समागताः ॥
देवा देवर्षयो देव्यो ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षयोऽमला ॥ १६ ॥
राजानश्च तथा मर्त्याः सर्वे सत्पुण्यमानसाः ॥
तत्रागत्य यथा काले सस्नुः प्रीताः सितासिते ॥ १७ ॥

( स्पष्टार्थौ )

हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्य में रहनेवाले सभी देवता, देवर्षि, देवियां, और ब्रह्मर्षि एवं राजालोग तथा साधारण मनुष्य सत्य और पवित्र मन से उस समाज में एकत्रित होकर सम्पूर्ण माघ मासभर उचित समय से प्रसन्नतापूर्वक स्नान करते रहे ॥ १६, १७ ॥

तत्रताः पूर्वमुदिता मुने ! षड्मुनिकन्यकाः ॥
स्नानार्थं समुपायाता स्तीर्थराजे जितेन्द्रियाः ॥ १८ ॥

हे मुने ! तत्र तस्मिंस्तीर्थराजे प्रयागे पूर्वमुदिताः पूर्वोक्ताः जितेन्द्रियास्ता षड्मुनिकन्यकाः स्नानार्थं समुपायाता आगतवत्यः ॥ १८ ॥

हे मुनि ! अपनी इन्द्रियों को वश में रखनेवाली ६ मुनिकन्याएं जिनकी चर्चा पहले कर आया हूं वे भी उस तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने के लिए आईं ॥ १८ ॥

आगत्य विधिना सस्नुर्माघे मासि सितासिते ॥
सदा समाजम्पश्यन्त्यश्चेरु मीलितलोचनाः ॥ १९ ॥

आगत्य तत्र सितासिते शुक्ले पक्षे कृष्णे पक्षे च समस्ते माघे मासि विधिना स्नाता एवं विषयादिभोगलिप्साराहिताः परमात्मनि सततं लीनत्वान्मीलितलोचनास्सदा समाजं पश्यन्त्यश्चेरुः ॥ १९ ॥

**योगभ्रष्टास्ततो जाता महतांश्रीमतांकुले ॥**
**विप्राणां कुलजानान्ताः याः पूर्वं सख्यमाश्रिताः ॥२७॥**

योगभ्रष्टाः कन्यकाः यतः पूर्वं पूर्वस्मिन्भवे सख्यमाश्रिताः पारस्परिक प्रेम भावंगतास्त्रासन् अतस्ततोऽर्थान्मुनिगृहान्मृत्युम्प्राप्य कुलजानाम्महतांश्रीमताम्विप्राणां कुले जाताः सहैव पुनर्जन्मसम्प्राप्ताः ॥ उक्तंचापि " शुचीनां श्रीमतां गेहे गेहे विद्वज्जनस्यवा । अथवा श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो हि जायते " ॥२७॥

वे कन्याएं जो पूर्व जन्म में परस्पर प्रेम भाव से रहा करती थीं योग से भ्रष्ट होकर मर जाने पर उन्हों ने महाकुलीन एवं श्रीमान् ब्राह्मणों के कुल में एक साथ ही पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २७ ॥

**जामदग्न्यप्रदत्ता, या, धरा, विप्रेषुसंस्थिता ॥**
**तद्धरास्वामिनांगेहे जातास्तामुनिकन्यकाः ॥ २८ ॥**

जमदग्नेः अपत्यं जामदग्न्यस्तेन प्रदत्ता या धरा विप्रेषु संस्थिता । जामदग्न्यः परशुरामः एक विंशतिवारं निःक्षत्रां महीं कृत्वा सर्वांपृथिवीम्ब्राह्मणेभ्योददावितिकथा पुराणप्रसिद्धा । तद्धरास्वामिनामर्थाज्जामदग्न्यप्रदत्तधरानायकानांगेहेता मुनिकन्यका जाता जन्म प्राप्ताः ॥ २८ ॥

जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम ने इक्कीसवार क्षत्रिय राजाओं को मारकर पृथ्वी निःक्षत्र करदी । पृथ्वी पर कहीं क्षत्रियों का नाम निशान तक नहीं रहा तो ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करके देदी । यह कथा पुराणों में विस्तारपूर्वक है । उसी जामदग्न्य ( परशुराम ) की दी हुई पृथ्वी के स्वामी ये ब्राह्मण थे जिनके गृह में मुनि कन्याओं ने पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २८ ॥

उस महासमाज में विचरती हुई उन कन्याओं ने किसी समय में प्रेम भरे उच्चस्वर से विष्णु भगवान् के गुणानुवादों को गाते और निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम एवं धैवत और पंचमपर्यन्त स्वरों के भेदों से विभूषित अपनी विशाल वीणा अङ्क में ले ब्रह्मानन्द के समान आनन्ददायक लय को बजाते तथा ता के समय अपने शिर को कंपाते हुए किशोरवयस, प्रसन्न वद नारद मुनि को देखा ॥ २१, २२, २३ ॥

दृष्ट्वा च मुहुस्सर्वाः कामबाणवशंगताः ॥
योग मार्गम्विनिन्दन्त्यः स्तुवन्त्यो भोग भूमिकाम् ॥२४

एवम्भूतं मुनिं नारदं दृष्ट्वा चकाराजितेन्द्रिया अपिता सर्वा कन्यकाः कामबाणवशंगता योगमार्गम्विनिन्दन्त्योभोग भूमिकां स्तुवन्त्यः मुहुः मोहम्प्राप्ताः ॥ २४ ॥

ऐसे सुन्दर स्वरूप नारदजी को देखकर काम के वशीभूत होकर वे मुनिकन्याएं मोहित होगईं और योग-मार्ग की निन्दा तथा विषय भोग की स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

एवं योगम्परित्यज्य भ्रष्टास्ता मुनिकन्यकाः ॥
विष्णु माया हृतात्मानः पतिता योग भूमितः ॥ २५ ॥
महाकामग्रहग्रस्ता विह्वला ग्रहली कृताः ॥
काम वासनाया विद्धा मृताः स्वायुष्य संक्षये ॥ २६ ॥

( स्पष्टार्थः )

इस प्रकार वे मुनिकन्याएं योगमार्ग से भ्रष्ट हो गईं विष्णु भगवान् की माया ने उनकी आत्मा को हरण कर योग भूमि से गिरा दिया और महाकामरूपी ग्रह से ग्रस्त होकर वे विह्वल और उन्मत्त होगईं एवं कामवासनासे विद्ध होकर सब ही सब कन्याएं मरगईं ॥२५,२६

योगभ्रष्टास्ततो जाता महतांश्रीमतांकुले ॥
विप्राणां कुलजानान्ताः याः पूर्वं सख्यमाश्रिताः ॥२७॥

योगभ्रष्टास्ताः कन्यकाः यतः पूर्वं पूर्वस्मिन्भवे सख्यमाश्रिताः पारस्परिक प्रेम भावंगताआसन् अतस्ततोऽर्थान्मुनिगृहान्मृत्युम्प्राप्य कुलजानाम्महतांश्रीमताम्विप्राणां कुले जाताः सहैव पुनर्जन्मसम्प्राप्ताः ॥ उक्तंचापि " शुचीनां श्रीमतां गेहे गेहे विद्वज्जनस्यवा। अथवा श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो हि जायते " ॥२७॥

वे कन्याएं जो पूर्व जन्म में परस्पर प्रेम भाव से रहा करती थीं योग से भ्रष्ट होकर मर जाने पर उन्हों ने महाकुलीन एवं श्रीमान् ब्राह्मणों के कुल में एक साथ ही पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २७ ॥

जामदग्न्यप्रदत्ता, या, धरा, विप्रेषुसंस्थिता ॥
तद्धरास्वामिनांगेहे जातास्तामुनिकन्यकाः ॥ २८ ॥

जमदग्नेः अपत्यं जामदग्न्यस्तेन प्रदत्ता या धरा विप्रेषु संस्थिता। जामदग्न्यः परशुरामः एक विंशतिवारं निःक्षत्रां महीं कृत्वा सर्वांपृथिवींब्राह्मणेभ्योददावितिकथा पुराणप्रसिद्धा। तद्धरास्व मिनामर्थाज्जामदग्न्यप्रदत्तधरानायकानांगेहेता मुनिकन्यका जाता जन्म प्राप्ताः ॥ २८ ॥

जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम ने इक्कीसबार क्षत्रिय राजाओं को मारकर पृथ्वी निःक्षत्र करदी। पृथ्वी पर कहीं क्षत्रियों का नाम निशान तक नहीं रहा तो ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करके देदी। यह कथा पुराणों में विस्तारपूर्वक है। उन्हीं जामदग्न्य ( परशुराम ) की दी हुई पृथ्वी के स्वामी जो ब्राह्मण थे जिनके गृह में मुनि कन्याओं ने पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २८ ॥

**यत्र वै कपिलंचेत्रं महापुण्यं महीतले ॥**
**एक योजन विस्तारं मध्यतः पादयोजनम् २६ ॥**

जामदग्न्यः सर्वां पृथ्वीमेकस्मिन्नैकदेशनिवासिब्राह्मणे एव नादात् किन्तु यस्मिन्यस्मिन्देशेयंयंराजानमवधीत् तस्मिन्तद्देशवासिब्राह्मणेभ्यः प्रादात्तथैवास्मिन्मरुकान्तारशासितृणाम्भूमिमेतद्देशनिवासिभ्योददौ यत्र ते ब्राह्मणा निवासयामासुस्तत्रैकयोजनविस्तारं मध्यतः पाद योजन मानं. महा पुण्यं पवित्रं कापिलं कपिलसम्बन्धिचेत्रं महीतले आस्ति ॥ २६ ॥

परशुराम ने जीती हुई समग्र पृथ्वी एक ही किसी ब्राह्मण को अथवा एकही किसी देश के निवासी ब्राह्मणों को नहीं दी, क्योंकि ऐसा किया होता तो पुराणों में अवश्य इसकी कोई कथा मिलती। इसलिये यह अनुमान होता है कि जिस देश अथवा राजधानी को जीता वहां की पृथ्वी उसी देश के निवासी ब्राह्मणों को दान कर दी, इसी प्रकार इस मरुकान्तार प्रदेश को जीतकर यहां की भूमि इसी देश के अर्थात् कपिलक्षेत्र के निवासी ब्राह्मणों को ही दान कर दी जो कपिलक्षेत्र पृथ्वी पर महापवित्र परिगणित किया गया है जिसकी सीमा चारोंतरफ एक योजन की लम्बाई चौड़ाई पर है और मध्य में चतुर्थांश योजन अर्थात् कोस भर के दीर्घ विस्तार में वह धाम है ॥ २६ ॥

**मध्यतः क्रोशमात्रंतज्ज्योति रूपं सनातनम् ॥**
**मृतास्तत्रविमुच्यन्ते सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ३० ॥**

(१) पाठकगण! हिन्दूधर्म मर्यादानुसार अन्य तीर्थस्थानों की भांति इस पवित्र क्षेत्र के विषय में उपरोक्त २६ व ३० के श्लोक में इस पुण्यक्षेत्र का महत्व भी सम्यक्तया प्रदर्शित हो रहा है और इस क्षेत्र का केन्द्रस्थान, मन्दिर व जल राज की भूमि स्थान ही माना गया है उससे चारों ओर १ कोस की सीमा पर्यन्तस्थल एक आदि और ज्योति रूप स्थान है। इस सीमा के अन्दर पूर्णार्द्धिउमत इन्तर्म करके और

मध्यतः क्रोशमात्रमिति स्पष्टम् ॥ ३० ॥

योजन के चतुर्थांश परिमित मध्य में कपिलमुनि का धाम है और योजन ४ कोस को कहते हैं इसका चतुर्थांश एक कोस हुआ। अतः इस श्लोक में उसी पूर्वोक्त मध्यवर्ती धाम का वर्णन करते हैं कि मध्य में कोसमात्र का जो क्षेत्र है वह कपिलधाम है, ज्योतिरूप है, और सनातन है। उस धाम में देह त्याग करनेवाले उसी समय अपने संसारी कर्मबन्धनों को त्याग कर मुक्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

तद्धामसीम सामीप्ये विप्रक्षेत्राणि सन्निवै ॥
तेषु क्षेत्रेषु तेविप्राः स्वदासैः शूद्रजैस्सह ॥ ३१ ॥
वापयन्ति सदाधान्यं स्वकुटुम्बस्य पुष्टये ॥
प्रावृट् काले महामेघजलमालासमाकुले ॥ ३२ ॥

( स्पष्टार्थ )

उस धाम की सीमा के समीपही में उन ब्राह्मणों के खेत हैं वे ब्राह्मण जब बरसात के दिनों में पूरी वर्षा होने लगती है और आकाश सघन एवं सजल मेघों से आच्छादित हो जाता है तो अपने कुटुम्बों

¹पापीजन अपने पापों से मुक्त होकर पुण्य के भागी होते हैं यहांतक कि जो अपने शुद्ध अन्तःकरण से वहां आकर मरने की इच्छा से मरते हैं वे भी मोक्ष को प्राप्त होजाते हैं और इस कोस भरकी पवित्र भूमि के चारों ओर ४ कोस की सीमा तक इसी पवित्र क्षेत्र ही की सीमा लिखी है। जिसे इस देश में "कोसन" शब्द के नाम से कहते हैं लिखा गया है इसलिये इस ४ कोस की भूमि को शास्त्र में परमपवित्र एवं मोक्षदायिनी भूमि मानी है इसमें सब प्रकार की पशुहिंसा या जीवहिंसा वर्जित है जो कि सर्वोचित है। इस समय भी देखते हैं तो कई पवित्र तीर्थों के आसपास जो इसी कोसन निमित्त ही भूमि छोड़ीगयी है वह सब पवित्र भूमि ही समझी जाती है पहले यहांतक इसका गौरव था कि किसी तीर्थ के कोसन में कैसा ही दोषी, पापी व अत्याचारी जो पूर्ण दंड के योग्य होता वह कोसन में शरण होने पर राजदंड से मुक्त होने के साथ २ इह लोक के दोषबन्धन से भी मुक्त होजाता था।

के पालन पोषण के लिए अपने भृत्यों के साथ उन खेतों में धान्यों को पालन करते हैं ॥ ३१, ३२ ॥

यदा क्षेत्रेषु संजाता धान्यानां बहुसम्पदः ॥
कार्तिके विमले मासि सर्वलोक मनोहरे ॥ ३३ ॥
तदा ब्राह्मण कन्यास्ताः क्षेत्र रक्षण तत्पराः ॥
वयस्सन्धिसमारूढाः सारसौन्दर्य खानयः ॥ ३४ ॥
स्वान् स्वान् पितॄननुज्ञाप्य क्रीडनार्थं स कौतुकाः ॥
क्षेत्ररक्षामिषीकृत्य प्रत्यहं जग्मुरादृताः ॥ ३५ ॥

सर्व लोक मनोहरे विमले कार्तिके मासि यदा क्षेत्रेषु धान्यानां बहुसम्पद्संजातास्तदाताः क्षेत्ररक्षणतत्परावयस्सन्धिसमारूढा यौवनारंभिकावस्थाप्राप्ताःसारसौंदर्यखानयःपरमरूपवत्यो ब्राह्मणकन्याः क्षेत्ररक्षामिषीकृत्य क्षेत्ररक्षाव्याजेन स्वान् स्वान् पितॄननुज्ञाप्य तैरादृताः स्नेहेनानुज्ञप्ताः सकौतुकाः क्रीडनार्थं प्रत्यहं जग्मुः ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

सर्वजन मनोहर विमल कार्तिक मास में जब खेतों में प्रचुर धान्य की सम्पत्ति हो जाती थी तो खेतों की रखवाली के लिए परम उत्सुक होकर यौवन की प्रारंभिक अवस्था में प्राप्त रूप सौन्दर्य्य की खानि वे ब्राह्मण कन्याएं खेत की रखवाली का बहाना करके अपने अपने पिताओं से आज्ञा लेकर और उनसे आदृत होकर कौतुक के साथ प्रतिदिन खेलने के लिए जाती थीं ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

चटकादि विहंगेभ्यो मृगादिभ्यो दिने दिने ॥
धान्यरक्षां प्रकुर्वन्त्यः क्रीडन्त्यः कौतुकान्विताः ॥३६॥

दिने दिने चटकादिविहंगेभ्योमृगादिपशुभ्यो धान्यरक्षां प्रकुर्वन्त्यः कौतुकान्विताः क्रीडन्त्यः खेलान्तिस्म ॥

वे कन्याएं प्रतिदिन पशु-पक्षियों से धान्य की रक्षा करती हुई बड़े कुतूहल के साथ खेलती थीं ॥ ३६ ॥

सायम्पुन गृहानान्तु यदेच्छाजायतेहृदि ॥
स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य समायुक्ताः श्रमान्विताः ॥ ३७ ॥
समागत्य स्ववासांसि तीरेन्यस्यतनुमध्यमाः ॥
प्रत्यहं स्नान्ति विप्रेन्द्र ! कापिलेये सरोवरे ॥ ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पुनः सायं यदा हृदि गृहगमनेच्छा जायते तदा समायुक्ताः सहगमनशीला श्रमान्विताः समस्तदिवसक्रीडनात् स्थगितास्तनुमध्यमास्ताः स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य कापिलेये सरोवरे समागत्य तीरे स्ववासांसिन्यस्य प्रत्यहं स्नान्ति स्नानं कुर्वन्तिस्म ॥ ३७, ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! सायंकाल में जब घर जाने की इच्छा होती थी तो दिन भर की क्षेत्ररक्षा और खेल से थक कर वे कन्याएं अपने २ खेतों से परावर्तित हो (लौट) कर कपिल सरोवर पर आती और अपने वस्त्रों को सरोवर के तीर पर रखकर प्रतिदिन स्नान करती थी ॥ ३७, ३८ ॥

क्षुधाविष्टा भक्षयित्वा क्षेत्रानीतं फलादिकम् ॥
तत्र प्रक्षिप्य चोच्छिष्टं गृहाण्येति स्वकान् स्वकान् ॥ ३९ ॥

समस्त दिन परिश्रमात्क्षुधाविष्टास्ताः कन्याः क्षेत्रानीतं फलादिकं भक्षयित्वा तत्रोच्छिष्टञ्च प्रक्षिप्य स्वकान् २ गृहान्या-न्तिस्म ॥ ३९ ॥

दिन भर के परिश्रम से भूखी और थकी हुई कन्याएं स्नान करने के अनन्तर खेतों से लाये हुए फल मूलादि का भक्षण कर उच्छिष्ट को वहां ही छोड़कर अपने २ घर को चली जाती थी ॥ ३९ ॥

**एवं तासां कुर्वतीनां व्यतीता द्वित्रहायनाः ॥**
**तद्वारिस्नानपुण्येन परां शुद्धिमुपागताः ॥ ४० ॥**

( स्पष्टम् )

इस प्रकार प्रतिदिन स्नान करते हुए कन्याओं को दो तीन वर्ष व्यतीत हो गए उस सरोवर के जल में स्नान करने के पुण्य से वे परमशुद्धि को प्राप्त हो गईं ॥ ४० ॥

**ततस्तयं स्मृतौ जातं पूर्वं जन्म विचेष्टितम् ॥**
**स्वसखित्वंपरंप्रेम योगभ्रंशन्तथैवच ॥ ४१ ॥**

ततोऽर्थात्कापिलेयस्नानपुण्यान्छुद्धिप्राप्तानन्तरं पूर्वं जन्म विचेष्टितम् स्वसखित्वं परंप्रेम तथैव योग भ्रंशत्वं चकारान्मुनीनां गृहेजन्म, योगादिसाधनं, प्रयागगमनं, नारदेक्षणमित्यादिच, सर्वतासां स्मृतौजातम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर अर्थात् कपिलसरोवर में नित्य स्नान करने से जो शुद्धि प्राप्त हुई उसके अनन्तर उन कन्याओं को अपने पूर्वजन्म की सब कथा ( अर्थात् मुनिओं के गृह में जन्म लेकर अष्टांग योग की साधना, परस्पर की मैत्री तथा घनिष्ठ प्रेम, प्रयागराज की यात्रा, वहां नारदजी का सौन्दर्य देख मोहित होना, विषय भोग की उत्कटेच्छा से योगमार्ग की निन्दा करते शरीर को त्याग करना और पुनः पवित्र और कुलीन ब्राह्मणों के घर में जन्म लेना ) इत्यादि एक एक करके ज्ञात होगई ॥ ४१ ॥

**एवं स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वस्यांतास्तपोधन ! ॥**
**दैवेन दुर्वितर्क्येण सद्यः पंचत्वमागताः ॥ ४२ ॥**

हे तपोधन ! एवं पूर्वोक्त क्रमेण पूर्वस्यां स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वजन्म स्मृतौ संजातायां दुर्वितर्क्येणाविचिन्त्येन दैवेन भाग्येन हेतुना सद्य स्तत्कलएवताः पञ्चत्वमागता अर्थान्मृताबभूवुः ॥४२॥

हे तपोधन ! जब इस प्रकार पूर्व जन्म की स्मृति प्राप्त हो गई तो अचिन्त्य दैवसंयोग से तत्काल ही सब कन्याओं ने एक साथ अपने शरीर का त्याग करदिया ॥ ४२ ॥

**तत्तीर्थस्य प्रभावेण योग भ्रष्टा दिवंगताः ॥**
**पुनरेव मुनीनान्नाः कुलेजाता महात्मनाम् ॥ ४३ ॥**

पूर्व भवे योगभ्रष्टा अपितास्तस्य तीर्थस्य कपिलायतनस्य प्रभावेण दिवं स्वर्गंगताः पुनः कियत्कालं स्वर्ग सुखं भुक्त्वा महात्मनां मुनीनां कुले एव जाताः ॥ ४३ ॥

वे ब्राह्मण कन्याएं पूर्व जन्म में योग से भ्रष्ट हो गई थीं अब उत्तरोत्तर अधोगति को ही प्राप्त होतीं, परन्तु उस कपिलतीर्थ के प्रभाव से स्वर्ग को गई और वहां कुछ दिनों तक स्वर्ग सुख का भोग करके पुनः महात्मा मुनियों के कुल में उन्हों ने जन्म ग्रहण किया ॥ ४३ ॥

**महा मुनिभिरूढाश्च पुनर्देवर्षिसन्निभैः ॥**
**कियत्कालं परंभोगं भुंजानाः सहभर्तृभिः ॥ ४४ ॥**
**स्थितादिव्येषु लोकेषु मोदमानाः प्रभान्विताः ॥**
**तद्धामनि तदुच्छिष्ट प्रक्षेपोद्भूतदोषतः ॥ ४५ ॥**
**किञ्चित्कारणमुद्दिश्य पुनस्त्यक्ताः स्वभर्तृभिः ॥**
**पञ्चेव कृत्तिका जाता भूय संभूयभूरिशः ॥ ४६ ॥**

पुनः अर्थान्मुनिगृहे जन्म ग्रहणानन्तरं देवर्षिसन्निभैर्महा मुनिभिरूढा विवाहिताश्चताः भर्तृभिस्सह कियत्कालं परं भोगं भुंजानाः मोदमानाः प्रभान्विताः दिव्येषु लोकेषु स्थिताः निवासमापुः। अनन्तरं तद्धामनि तदुच्छिष्ट प्रक्षेप दोषतः अर्थात् पूर्वस्मिन्भवे ब्राह्मण गृहे जन्म संप्राप्य चेत्ररदासीपीकृत्य क्रीडनार्थं

गत्वा ततः फलादिकं संगृह्यसायं कपिल सरोवरमागत्य तत्र स्नात्वा फलादिकं भक्षयित्वा प्रत्यहं यदुच्छिष्टं तत्तत्रैवाचिक्षिपुस्तदुद्भूतदोषादिहभवे मुनीनांगृहे स्वभर्तृभिः किंचित्कारणमर्थादपवादमुद्दिश्य त्यक्ताः । अनन्तरं ता एव षट्कन्याः भूयः संभूयार्थपतिभिस्त्यागानन्तरं देहंविसृज्याकाशे भूरिशोबाहुल्येनषट्कृत्तिकाः कृत्तिका नक्षत्र स्यषट्ताराः संजाताः ॥ ४४, ४५, ४६ ॥

पुनः उन मुनि कन्याओं का विवाह देवर्षितुल्य मुनियों से हुआ और उन कन्याओं ने अपने २ स्वामियों के साथ कुछ दिनों तक उत्तम भोगविलास किया और पूर्ण प्रभा एवं हर्ष के साथ दिव्यलोक में जहां उन मुनियों के रहने का निवासस्थान था वहां निवास किया, तदनन्तर पूर्वजन्म में जो कपिलसरोवर के तीर पर फल मूल खाकर उच्छिष्ट प्रक्षेपण किया करती थीं उसके दोष से इस योनि में किसी कारण स्वामियों ने उन को त्याग कर दिया। पति से त्यक्त होकर उन्हों ने पुनः अपने शरीर को त्यागकर दिया। तीर्थमें उच्छिष्ट त्याग करने का इतना ही फल उनको भोगना पड़ा कि पति से त्यक्त हुईं। अनन्तर कई जन्मों के सुकृत वश तथा कपिलाश्रम के शुद्धसरोवर में स्नान करने के कारण जो उनके असंख्य पुण्य संचित हो गये थे उन पुण्यों के प्रभाव से आकाश में तारा होकर छओं कन्याएं विकास करने लगीं जिनको कृत्तिका के तारे कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में छुरा के आकार में इन तारों की स्थिति बताई गई है ॥ ४४, ४५, ४६ ॥

आकल्पान्तं स्थिता ब्रह्मन्दिविभान्ति महाप्रभाः ॥
महायोगि प्रभावेण महायोगिन्यएवताः ॥ ४७ ॥
तीर्थ स्नानज माहात्म्यं सूचयन्ति निरन्तरम् ॥

हे ब्रह्मन् महायोगिप्रभावेण महायोगिनः कपिलमुनेः प्रसादात् ता एव महायोगिन्यो महप्रभा [illegible]

दिवि आकाशे स्थिता विभान्ति ॥ ४७ ॥ तथाच निरन्तरं तीर्थस्नानजमाहात्म्यं सूचयन्ति ॥

हे ब्रह्मन्! महायोगी कपिलमुनि के प्रभाव से महायोगिनी वे कन्याएं महोज्ज्वल तारा रूप धारण कर कल्पान्त तक के लिए आकाश में प्रकाश कर रही हैं ॥ ४७ ॥ और निरन्तर तीर्थस्नान के महात्म्यों की सूचना दे रही हैं ॥

**यासां कार्तिकमासस्य सारासार विवेकिनः ॥ ४८ ॥**
**नाम निर्वचनं चक्रुर्नरा नैरुक्त वेदिनः ॥**
**तासांस्तन्यं मयापीतं षड्मुखैर्घटजोत्तम ॥ ४९ ॥**

यासां षण्णां कन्यकानां कार्तिक मासस्य सारसार विवेकिनः कार्तिकमासमाहात्म्यवेत्तारो नैरुक्तवादिनो निरुक्तशास्त्रज्ञा नरा एकैव कृत्तिकेति नाम निर्वचनं चक्रुस्तासामपरस्परमतिप्रेमदर्शनादितिभावः। हे घटजोत्तमागस्त्य! तासांस्तन्यं दुग्धंमया षड्भिर्मुखैः पीतम् ॥ ४८, ४९ ॥

☞ पृष्ठ ६४ के ४४, ४५, ४६ वें श्लोकों पर विशेष वक्तव्य

(१) यद्यपि जब ये कन्याएं योग से च्युत होकर ब्राह्मणों के घर में उत्पन्न हुईं और नित्य घरों से आकर सायंकाल के समय कपिल सरोवर में स्नान कर के अपने २ गृह को जाती थीं जिस स्नान के पुण्य से पूर्व जन्म की स्मृति हुई और तत्काल ही इन्होंने देहत्याग कर दिया और स्वर्गलोक को गयीं, वही समय इनकी मुक्ति का था परन्तु उस तीर्थ में उच्छिष्ट त्याग करना ही एक अपराध था जिससे पुनः एक बार मुनिकन्या होकर पतित्यागरूप दण्ड भोगना पड़ा और इसके अनन्तर जन्म-मरण से रहित हो आकाश में तारा रूप होकर आकल्पान्त वास करने लगीं। लिखा भी है कि "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि" अर्थात् शतशः कोटि कल्प व्यतीत होजाएं परन्तु कर्मों का नाश भोग करने ही से होता है। अथच "नह्यात्मनां कर्म फलोपभोगः कायाद्विना" अर्थात् कर्म का भोग भी शरीर धारण करने ही से होता है। इसीसे सिद्ध होता है कि जब कर्मों का नाश हो जाता है तो शरीर धारण करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है और शरीर धारण न करना ही मुक्ति है।

हे अगस्त्य ! कार्तिक मास के वास्तव तत्वों के ज्ञाता और निरुक्त शास्त्र के मर्मवेदी विद्वानों ने उन कन्याओं के लगातार कई जन्मों के परस्पर प्रेम को देखकर छओं का एक ही नाम ( कृत्तिका ) रक्खा उन्हीं कृत्तिकाओं का दुग्ध मैं ने अपने ६ मुखों से पिया है ॥ ४८, ४६ ॥

नोट—किसी कल्प की कथा है कि शंकरजी का विवाह दक्षप्रजापति की कन्या से हुआ था इसलिये शंकरजी सर्वदेव शिरोमणि होने पर भी दक्षप्रजापति के जामाता ही थे । एक समय ब्रह्मलोक में देव सभा हुई जिसमें सभी देवता पहले ही से आए हुए थे, दक्ष प्रजापति कुछ पीछे आए उनको सभा में उपस्थित देख सभी देवताओं ने उठकर अभिवादन और स्वागत किया परन्तु आदिदेव शंकरजी ने कुछ भी नहीं किया । अपने जामता की ऐसी धृष्टता देख दक्षप्रजापति बहुत क्रुद्ध हुए और उस सभा से चलेगए, तब से शंकरजी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते थे । कुछ काल के बाद दक्षप्रजापति ने एक यज्ञ किया जिसमें शंकरजी को निमंत्रित करके नहीं बुलाया परन्तु पिता के यज्ञ करने का समाचार सुनकर दक्षपुत्री बिना निमन्त्रण के ही पिता के घर जाने को उद्यत होगई और शंकरजी से आज्ञा मांगी शंकरजी अपने श्वसुर के क्रुद्ध होने की कुल कथा कहकर दक्ष सुता को बहुत समझाया परन्तु दक्षपुत्री ने एक न माना और पिता के घर गई वहां जाकर यज्ञ में सब देवताओं का अंश देखा परन्तु शंकरजी का भाग कहीं नहीं देखा और सब किसी ने कुशलमंगल पूछा परन्तु दक्षप्रजापति ने अपनी कन्या को देखा तक नहीं, इसलिए पीहर में पति का और अपना अपमान देख ईर्षा के वश होकर योगाग्नि से भस्म होगई । वही दक्षसुता पुनः हिमाचल के घर जाकर अवतरित हुई और नारदजी उसकी हस्तरेखा देख " शंकरजी से विवाह होगा " इतना कहकर पार्वती को तपस्या करने का आदेश दिया था सो*

पाण्मातुर इतिख्यातो हृष्ट पुष्टश्च सर्वदा॥
नैष्ठिको ब्रह्मचार्यस्मि तासां योग प्रभावतः॥ ५०॥
सेनानीः सर्वदेवानां सर्वासुरनिकन्दनः॥

सर्वदा तासामेवस्तन्यपानेनाहं हृष्टः पुष्टः षाण्मातुर इतिख्यातश्च तथा तासां योग प्रभावतः सर्वदेवानां सेनानीः सर्वासुर निकन्दनो नैष्ठिको निष्ठावान्ब्रह्मचार्यस्मि॥ ५०॥

---

*पार्वती शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही थीं और इधर तारकासुर एक दानव महाप्रतापशाली ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सब से अवध्य होकर महाउपद्रव मचा रहा था तब सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उस दैत्य के वध का उपाय पूछा भगवान् ने कहा कि यह दैत्य और किसी से नहीं मरेगा यदि शंकरजी का पुत्र सेनापति हो और देवताओं की सेना तैयार हो तो इस दैत्य का वध होगा आजकल दक्षसुता हिमालय की कन्या होकर शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही है और तपस्या की सिद्धि का समय भी आगया है तुम लोग सप्तर्षियों की सहायता से शंकरजी को विवाह करने के लिए उद्यत करो इस विवाह से पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकासुर को मारेगा। अनन्तर सप्तर्षियों ने शंकरजी का विवाह पार्वती से कराया परन्तु कई कोटि वर्ष विहार में ही बीत गये पुत्रोत्पत्ति की कोई आशा ही नहीं दीख पड़ी और इधर दानवों के घोर उपद्रवों से देवलोक मर्त्य लोक और पाताल पर्यन्त हाहाकार मच गया था तब ब्रह्माजी को आगेकर सभी देवता शंकरजी से पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना करने के लिए कैलाश पर गये वहां ऐसा प्रबन्ध था कि शंकरजी का दर्शन ही दुर्लभ था तो अग्निदेव को कबूतर का रूप धारण करा इत्यादि सभी देवताओं ने कुञ्ज के अन्दर भेजा इन कपोतरूपी अग्निदेव को देखते ही शंकरजी देवताओं के।

सर्वदा उन्हीं माताओं के दुग्धपान करके मैं हृष्टपुष्ट हुआ और षाण्मातुर इस नाम से मैं विख्यात हुआ और उन के ही योग के प्रभाव से सब देवताओं का सेनापति हुआ और सभी राक्षसों का वध किया तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुआ हूं ॥ ५० ॥

१आने और विलास में विघ्न डालने का कारण समझ गए और विहार को परित्याग कर अमोघवीर्य को स्कन्दित कर दिया उसको अग्नि ने अपने चंचु में उठा लिया और भय के मारे वहां से भागे देवता लोग भी चले आए जब अग्नि को उस वीर्य का ज्वलन्त तेज नहीं सहन हो सका तो एक सरकण्डे के वन में डाल दिया वही स्कन्द हुए शंकरजी के स्कन्दित वीर्य से उत्पन्न हुए इसलिए उनका नाम स्कन्द, और अग्नि के मुख से उत्पन्न हुए इसलिए उनका नाम अग्निभूः हुआ और सरकण्डों में उत्पन्न हुए इसलिए उनको सरजन्मा, भी कहते हैं। जिस जगह सरकण्डों में इन की उत्पत्ति हुई उसके समीप ही गङ्गा के तीर पर जाने के लिए रास्ता था उसी रास्ते से प्रतिदिन वे ही ६ [illegible] कन्याएं जो मुनि पत्नी हुई थी स्नान के लिए आया करती एक रोज उन्होंने एक अद्भुत बालक सरकण्डे के वन में खेलते दे और उठा लिया तथा इस बालक को मैं रखूंगी मैं रखूंगी कहकर अ स्तनों से दूध पिलाने के लिए लड़ने लगी उस समय स्कन्दजी ने ६ [illegible] को धारण कर सबों का दुग्ध पान किया तब से इनका नाम षाण्मा[illegible] हुआ ६ माताओं का भाग एक बालक में बराबर हो उसको संस्कृ में षाण्मातुर कहते हैं। जिसका विग्रह वाक्य षण्णां मातॄणामपत्यम्पुमा षाण्मातुरः ऐसा होता है। और इस पुस्तक में स्कन्दजी ने स्व कहा है कि " तासां स्तन्यं मयापीतं मुखैःषड्भिर्द्विजोत्तम " अर्था उनका दुग्ध मैंने अपने ६ मुखों से पीया है। एवं आगे कहा है कि " षाण्मातुर इति ख्यातः " अर्थात् तब्र मेरा नाम ष[illegible]मातुर हुआ

प्रत्यब्दं कार्त्तिके मासिस्नानवेलामवाप्यताः ॥५१॥
अवलम्ब्यावतिष्ठन्ति पुनः स्नानोत्सुका इव ॥

ताः कृत्तिका आकाशस्थापि कार्तिकेमासि स्नानवेलामवाप्य पुनःस्नानोत्सुका इव प्रत्यब्दं प्रतिवर्षं अवलम्ब्याकाशादवतरन्त्य इव पश्चिमाशायां क्षितिजामवेतिष्ठन्ति एतदुक्तंभवति वस्तुतस्तु स्नान वेला अरुणोदयकालः तस्मिन्समये प्रायः कार्तिकान्ते कृत्तिकाताराः पश्चिमक्षितिजेदृश्यन्ते तत्र कारणम् सूर्यो यस्मिन्नृक्षे भवति तदृक्षमेव सूर्योदयवेलायाम्पूर्वस्मिन्क्षितिजे दृश्यते। इति ज्योतिष शास्त्रे स्पष्टम् एवं तस्माच्चतुर्दशं नक्षत्रम् तस्मिन्नेवकाले पश्चिमक्षितिजलग्नं दृश्यते कार्तिके मासे पूर्णिमान्त-काले पदार्थः क्रान्तिवृत्ते तुलान्ते वृश्चिकादौवोदेति तदा विशाखान्ते वा अनुराधायां सूर्यो भवति। विशाखानुराधयोः

नोट—वे कृत्तिकायें आकाश से स्नान के लिये कार्तिक मास में ही उतरती हुई दीख पड़ती हैं क्या? इसका उत्तर ज्योतिष शास्त्र से स्पष्ट होता है। क्योंकि ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में भूगोल खगोल ग्रहगोल के पारदर्शी विद्वान् लिखते हैं कि जिस समय सूर्य जिस नक्षत्र में होकर पूर्व की दिशा में उदित होता है उसी समय सूर्य नक्षत्र का पंद्रहवां नक्षत्र पश्चिम दिशा में पृथ्वी से लगा हुआ दीख पड़ता है यह सिद्धान्त है इसमें न्यूनाधिक कभी नहीं होता और राशिचक्र ग्रहों के साथ सदा पृथ्वी के चारों तरफ परिभ्रमण किया करता है मेषादि के प्रातःकाल में अश्विनी पूर्व दिशा में और चित्रा पश्चिम में रहती है और तुलादि में चित्रा पूर्व में और अश्विनी पश्चिम क्षितिज में दीख पड़ती है विशाखे सूर्य कार्तिकादि में होते हैं और कार्तिकी पूर्णिमा के लगभग विशाखा वा अनुराधा में सूर्य उदित होता है तो पश्चिम दिशा में प्रातःकाल के समय पृथ्वी से लगी हुई भरणी और कृत्तिका दीखती हैं मानों वह कृत्तिका भी कार्तिक की पूर्णिमा के स्नान करने को आकाश से उतरती हैं और ज्योतिष ग्रन्थों में इसलिये ही कार्तिकी पूर्णिमा में कृत्तिका नक्षत्र का योग हुआ करता है और इसी से उस महीने का नाम कार्तिक है क्योंकि पूर्णिमा ही से इसकी गणना होती है। चन्द्र चारवश कृत्तिका नक्षत्र कार्तिकी पूर्णिमा को आती है इसलिए ग्रन्थ में "कार्तिके पूर्णिमा स्नाने" ऐसा पद दिया है यहां नहीं कहे इसी प्रकार

सूर्योयदोदेति तदा पश्चिमाशायां क्षितिजासन्ने कदाचिदधः कदाचिदूर्द्ध्वभरणयः कृत्तिकाश्चापिदृश्यन्ते अतस्ताः कृत्तिकाः पुनः स्नानोत्सुकाइवालम्ब्यावतिष्ठन्ते इति कथनं ज्योतिष सिद्धान्त गत्यापि युक्तियुक्तमेवेति । पुनः प्रायः कार्तिक पूर्णिमायां कृत्तिका नक्षत्रमपि चन्द्रचारवशेन भवतीति पंचाङ्गे स्पष्टं तेनापिस्कन्दो-क्तिर्घटते ।

प्रतिवर्ष जब कार्तिक मास में स्नान का समय आता है तो वे कृत्तिकाएं आकाश से उतरती हुई दीख पड़ती हैं मानो फिर भी स्नान करने के लिए उत्सुक हुई हैं।

तस्मात्पातक संघातकारिणि स्नान्ति वारिणि ॥ ५२ ॥
कार्तिके कृत्तिकाछाये तेयान्ति विमलांगतिम् ॥
ये पुनः स्नान्ति तन्मासि कपिलायतने मुने ॥ ५३ ॥
तेषां किम्वर्ण्यतेभाग्यं महाभागवतां भुवि ॥

*की पूर्णिमाओं में एक एक खास नक्षत्र का योग होता है जिससे प्रचलित महीनों के नाम हैं जिसका प्रसंग वश यहां लिखता हूं ज्योतिषशास्त्र में मास गणना सौर सावन नाक्षत्र और चान्द्र के भेद से चार प्रकार की है और जिस गणना से जो कार्य करने को कहा गया है उसमें वही कार्य कियाजाता है परन्तु चन्द्रमान दो प्रकार से प्रसिद्ध है हम लोग शास्त्र में दोनोंही के जगह २ विषय उपस्थित देखते हैं उनमें एक को अमान्त कहते हैं जिसका उपयोग गणित में प्रायः हुआ करता है दूसरा पूर्णान्त है जिसका उपयोग बहुधा व्यवहार में होता है और पूर्णिमा को जो नक्षत्र आता है उससे ज्योतिषियों ने महीनों के नाम बनाये हैं जैसे चित्रा युक्त पूर्णिमा होने से चैत्र ( चैत ) विशाखा युक्त पूर्णिमा होने से वैशाख ज्येष्ठा युक्त पूर्णिमा होने से ज्येष्ठ एवं उत्तराषाढ़ से आषाढ श्रवण से श्रावण उत्तर भाद्रपदा से भाद्रपद अश्विनी से आश्विन मारवाड़ में आसोज कृत्तिका युक्त पूर्णिमा को कार्तिकी कहते हैं उससे कार्तिक मास होता है, एवं मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुण इत्यादि । संस्कृत में चित्रया युक्ता पौर्णमासी चैत्री तस्यां भवोऽयंमासः चैत्रः विशाखया युक्ता पौर्णमासी वैशाखी तत्र भवोऽयंमासो वैशाखः इत्यादि विग्रह से मास नाम सिद्ध होते हैं।

यतः पुनर्जननमरणादि संसारबन्धनमुक्ताः कृत्तिकातारा: कापिलेये कार्तिकस्नानवैभवेनैवजातास्तस्मात्पातकसंघात कारिणि नाशिनि कार्तिकेमासे कृत्तिकाख्ये अर्थात्पूर्णिमायां ये स्नान्ति ते विमलांगतिं यान्ति॥ यतः पूर्णिमायां कृत्तिका योगो भवत्येवेति ॥ ५२, ५३ ॥

कार्तिक मास में कपिलतीर्थ के स्नान का ही यह विभव है कि वे मुनि कन्याएं .पुनर्जन्म-मरणादि सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर तारों के रूप में आकाश की शोभा बढ़ा रही हैं इसलिए महापातकों का नाश करनेवाला जो कपिलसरोवर है इस में जो कार्तिकी पूर्णिमा के दिन स्नान करते हैं उन की विमल गति होती है और जो कार्तिक मासभर स्नान करते हैं उन महाभागवतों के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ॥ ५२, ५३ ॥

**इति ते सर्वमाख्यातं धात्रीणां मे विचेष्टितम् ॥ ५४ ॥**
**कपिलालयस्नानपुण्याज्जातं लोकैक साक्षिकम् ॥**

( स्पष्टम् )

हे अगस्त्य ! इस प्रकार कपिलालय का स्नान के पुण्य से संसार में साक्षिरूप जो मेरी धातृयों के कृत्य हैं उनको तुम से मैने कहा है ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।

—:o:—

# पंचमाध्यायविवृतिः ।



( सूत उवाच )

इत्युक्त्वा पुनरप्याह महासेनो महाद्भुतम् ॥
कपिलालय माहात्म्यं सेतिहासं महामुने ॥ १ ॥

अस्मिन्वक्ष्यमाणे पंचमाध्याये स्कन्दःपुनरगस्त्यं कपिलालय माहात्म्यं सेतिहासं वर्णयति इत्युक्त्वेति हे महामुने शौनक ! इत्युक्त्वार्थात् स्वधात्रृणां ताराम्रूपाणां कृत्तिकानां चरितमुक्त्वा महासेनः स्कन्दः महाद्भुतं महाश्चर्य्यकरं सेतिहासं कपिलालय माहात्म्यं पुनरप्याह ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं कि हे मुनि शौनक ! महासेन स्कन्द देव ने चतुर्थाध्याय में इस प्रकार अपनी धात्री कृत्तिकाओं का चरित्र वर्णन करने के अनन्तर महाश्चर्यकर इतिहास के साथ कपिलालय माहात्म्य को फिर भी इस पांचवें अध्याय में कहा था सो सुनो ॥ १ ॥

महापाक संघात विघातक पटीयसीम् ॥
कपिलायतनींगाथां मत्मैत्रा वरुणे शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणे ! अगस्त्य ! महांश्चासौपातकाश्चः महापातकाः महापातकानां संघातः समूहो महापातकसंघातः तस्य विघातके विध्वंसने पटीयसी समर्थतरा ताम् महापातकसंघातविघातक पटीयसीम् महामहा पातकजाल विनाशदक्षां कपिलायतनीं गाथां कथां मत् कोर्थः मत्तः शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणि ! बड़े २ पातकों के समूहों को विनाश करने में समर्थ जो कपिलायतन की कथा है उसको सुनो ॥ २ ॥

कदाचित्कार्तिके मासिकान्त प्रान्त दिनेषुच ॥
समाजोऽभून्महांस्तत्र देशदेशनिवासिनाम् ॥ ३ ॥

कदाचित् पूर्वस्मिन्समये-एकदा कार्तिके अर्थात्कार्तिकमासे मासिकप्रान्तदिनेषु चात्र पादपूरकोऽव्ययोविभाति । मासे भवानि मासिकानि प्रान्ते यानि दिनानि-शुक्लैकादशीमारभ्य पूर्णिमा पर्यन्तानि तानि मासिकप्रान्तदिनानि तेषु देशदेशनिवासिनां मनुष्याणां समाजोऽभूत् ॥ ३॥

एक समय में कार्तिक मास के अन्त के पांच दिनों में देश देश के निवासी मनुष्यों का एक समाज एकत्र हुआ ॥ ३ ॥

कस्मिँश्चिद्दिवसेपुण्ये सत्समाजस्समुद्यतः ॥
तीर्थप्रदक्षिणीकर्त्तुं यात्राफलसमीहया ॥ ४ ॥

कस्मिँश्चित्पुण्ये दिवसे यात्रा फल समीहया यात्रा फल प्राप्ति कामनया तीर्थ प्रदक्षिणीकर्त्तुं सत् समाजः सतां साधूनां समाजस्समुद्यतः तीर्थप्रदक्षिणायामुद्यतोबभूव ॥ ४ ॥

किसी पुण्यकाल के दिन में यात्रा के पूर्ण फल प्राप्ति की कामना से सज्जनों का समाज तीर्थ की प्रदक्षिणा करने के वास्ते उद्यत हुआ ॥४॥

सर्वे प्रदक्षिणां चक्रुर्भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥
भगवन्नामगृह्णाना नानादानादृताशयाः ॥ ५ ॥

तस्मिन्नुद्यते समाजे भगवन्नामगृह्णानाः सततं भगवन्नामोच्चारणतत्पराः नानादानादृताशयाः नानादानानि तेभ्य आदृतः समादरं प्राप्तः आशयः मनोभिलाषोयेषान्ते नानादानादृताशयाः अनेक दान ग्रहणात्सफलमनोरथाः भिक्षवः। कुटुम्बिनश्च सर्वे प्रदिक्षणं चक्रुः ॥ ५ ॥

उसी समय अनेक दानों से तृप्त भिक्षुक लोग ग्र...
(गृहस्थ) लोगों ने भी भगवान् के नाम को जपते हुवे प्रदक्षिणा...

तत्र कश्चिद्भिक्षुरभूत् स्वशुना सहितोवशी॥
सोपि प्रदक्षिणं पुण्यंचक्रे सर्वजनैः सह॥ ६॥

तत्र समाजे स्वशुनासहितः अवशी अहर्निशं स्व...
परिपोषणाय स्वोदरपूरणायच भिक्षार्थं लुब्धचितः कश्चिद्भिक्षु...
गतवानितिभावः सोपि सर्वजनैः सह प्रदक्षिणं चक्रे॥ ६॥

उस समाज में अपने कुत्ते को साथ लेकर कोई लुब्धचित्त भिक्षु...
घुस गया और उसने भी सब लोगों के साथ उस पुण्य प्रदक्षिणा...
किया॥ ६॥

तस्यानुयायी तच्छ्वापिचक्रे तीर्थं प्रदक्षिणां॥
नानाभावयुतो लोको दृष्ट्वातं विस्मितोऽभवत्॥ ७॥

तस्य भिक्षोरनुयायी सहानुगन्ता तत्तस्यश्वा इतिविग्रहात्
तच्छ्वापि तीर्थप्रदक्षिणां चक्रे कृतवान्। नानाभावयुतोलोक
स्तंश्वानं प्रदक्षिणांकुर्वन्तं दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत्॥ ७॥

उस भिक्षुक के पीछे पीछे चलनेवाले कुत्ते ने भी तीर्थ की
प्रदक्षिणा की, यह देख अनेक भाव से युत समाज के सभी लोग
आश्चर्यान्वित हो गये॥ ७॥

केचित्तंभर्त्सयन्तिस्म धिक्कुर्वन्तिस्मकेचन॥
तथापि भिक्षोः पार्श्वं स न विमुंचति वै मनाक्॥ ८॥

केचित्तंश्वानं भर्त्सयन्तिस्म भर्त्सनां दण्डप्रहाररूपताड़नां
कुर्वन्तिस्म परश्च भर्त्सना लगुडप्रहाररूपंभवति। केचन तं धिक्

कुर्वन्तिस्म अर्थात् हुंकारशब्देन स्वनासिकास्थानुत्पन्नं कुर्वन्तिस्म लोके धिक्शब्दस्य पर्यायः दुरदुर शब्दः दूर करणे उपयुक्तो भवति। तथापि स श्वा कुक्कुरः भिक्षोः पार्श्वं सामीप्यं मनाक् स्तोकमपि न विमुंचतिस्म लोकैः दुरदुरादिशब्देन लगुडादिप्रहारेण च पीड्यमानोऽपि स्वस्वामिनः नित्यमनुगच्छन्नेवासीत् ॥ ८ ॥

कोई उस कुत्ते की भर्त्सना करते थे लकड़ियों से मारते थे कोई दुरदुराते थे तोभी वह अपने मालिक (उस भिक्षुक) के पास से नहीं हटता था ॥ ८ ॥

केचित्तत्र वदन्तिस्म जना आचार तत्पराः ॥
श्वायं स्पृशति सर्वान्नः सश्वो निष्कास्यतां यतिः ॥ ९ ॥

केचिज्जनाः आचारतत्पराः सदा शौचाचारयुक्तास्तत्र समाजे वदन्तिस्म यदयं श्वा नः सर्वान् स्पृशति एनं हठात् सगृह परिव्राजकं निष्कासयताम् ॥ ९ ॥

उस समाज में जो बड़े आचार-विचार की विशेषता रखनेवाले मनुष्य थे वे कहते थे कि यह कुत्ता हमलोगों को स्पर्श करता इसको पकड़कर बाहर निकाल दो ॥ ९ ॥

अन्ये पुनः शान्तिपराः भेदं स्वार्थं समादधन् ॥
एवं सत्यं प्रवदन्तिस्म सान्त्वयन्तः स्मितानना: ॥ १० ॥

पुनरन्ये शान्तिपराः शान्तिप्रियाः निर्मत्सराः [illegible] [illegible] एवं न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सान्त्वयन्तः स्मितानना: [illegible] प्रवदन्तिस्म ॥ १० ॥

फिर उस समाज के और लोग जो हमेशः शान्ति को प
दाले और सब से थोड़ी हंसी के साथ प्रिय वचन बोल
राग द्वेष रहित महात्मा थे। जो प्राणीमात्र को एक सा देखते
लोगों (जो कुत्ते को पकड़कर समाज से बाहर करने को उ
से, उस भिक्षुक (जिसका वह कुत्ता था) के साथ कहीं वि
बढ़ जाय इस विचार से समझाते हुवे कहने लगे कि ऐसा का
नहीं करना चाहिये अर्थात् उस कुत्ते को बाहर कभी नहीं नि
चाहिये ॥ १० ॥

तान्प्रत्यूचुः पुनस्तेतु स्वाचाराग्रह कारिणः ॥
भवतां किंनुवक्तव्यं यूयं ब्रह्मविदःक्षितौ ॥ ११ ॥
शुनिचैवश्वपाकेच परं ब्रह्मैव पश्यथ ॥
एवं वचनवक्रोक्त्या विविधुस्तांस्तमोयुताः ॥ १२ ॥

सर्वत्रैव समाजे सर्व विधा मनुष्या एकत्रीभवन्ति तथैवत्रा
प्रदक्षिणां कुर्वति शुनि, प्रदक्षिणं कुर्वतांजनानां मध्यतो दह
मुत्पन्नम् तत्र राजसतामसानामेकंदलम् सात्विकानांच द्विती
प्रदक्षिणकर्मणिपरस्थानं दृष्ट्वा उक्तदलद्वये विवादसमुपस्थि
प्रदक्षिणपथे शुनोगमनं राजसतामसानां बाह्यसदाचारप्रदर्शि
मतेऽनर्गलमासीदतस्ते तं वहिःकर्त्तुमुद्यताः सात्विकास्तु भो।
कार्य्यमिति कथित्वा तान् सान्त्वयन्तिस्म। एवं परस्परं विवा
क्रमशो वर्द्धमाने। तामसानां वाक्यम् तान्प्रत्यूचुरित्याद्य
श्वाऽभवत् ॥ स्वाचाराग्रहकारिणः स्वाचाराभिमानिनस्तमोयु
तास्तमस्स्वभावाज्जनास्ते तान् सात्विकान्पुनः प्रत्यूचुः पूर्वं सात्विक
वचनंश्रुत्वा, पुनरूचुरिति। यूयं क्षितौ ब्रह्मविदः भवतां किंनुवक्तव्य
यथात्मनि तथैव शुनिश्वपाकेचैव परंब्रह्मैव पश्यथ एवं वचन
वक्रोक्त्या नानाविधेन तान् विविधुर्मद्ग्रामगः ॥ ... २ ॥

जहां कहीं ज्यादा मनुष्य एकत्र हो जायें उसको समाज या मेला कहते हैं और ऐसे समाज में सब प्रकार के मनुष्यों का रहना स्वाभाविक और उनमें अनेक प्रकार का प्रसंग भी उठजाना स्वाभाविक है, यहां पर जो समाज एकत्र था उसमें भी सतोगुण रजोगुण और तमोगुण की प्रकृति के मनुष्य थे और प्रसंग उस भिक्षुक के कुत्ते का आ पड़ा। भिक्षुक के कुत्ते को समाज के साथ प्रदक्षिणा करते देख समाज में दो दल होगये। एक दल तो रजोगुण तमोगुणवालों का बनगया, दूसरा सतोगुणियों का, और तमोगुणी जो बाहर २ से अपने सदाचार का भारी आडम्बर फैलाये थे वे कहते थे कि कुत्ते को बाहर निकालदेना चाहिये हम लोगों को छूकर अपवित्र करेगा। और सात्त्विक कहते थे कि ऐसा नहीं करना चाहिये। यहीं से विवाद आरंभ हुआ। अब आगे वादविवाद उत्तर प्रत्युत्तर जैसा चला सो कहते हैं। सात्त्विकों के मना करने पर तमः प्रकृतिवाले बोले, कि आपका क्या कहना है? आप लोग तो इस पृथ्वी में साक्षात् ब्रह्मज्ञानी हैं जैसे अपने में ब्रह्म को देखते हैं वैसे ही एक कुत्ते और एक चाण्डाल में भी परंब्रह्म को देखते हैं। इस तरह अपने व्यंगवचन के बाणों से उनको बेधने लगे॥११,१२॥

तान्प्रत्यूचुः पुनस्तत्र सात्त्विकं भावमाश्रिताः॥
को जानाति क एषोऽत्र भिक्षुरूपस्त्वनुदराः॥ १३॥
एतद्वयंतु जानीमस्तीर्थे कार्य्यं नहिंसनम्॥

अत्र सामाजिक विवादे ते सात्त्विकं भावमाश्रिता जनाः पुनस्तान् तमस्स्वभावान्प्रति ऊचुः। अहो! क एषःरा, अयमनघः भिक्षुरूपस्त्व इति को जानाति वयं नजानीम इति। वयंतुएतज्जानीमः यत् तीर्थे हिंसनं न कार्य्यम्॥ १३॥

फिर सात्त्विक बुद्धिवाले तामसों से बोले कि यह कुत्ता क्या है और क्या कर रहा है यह कौन जाने हम तो सिर्फ यह जानते हैं कि तीर्थ में हिंसा नहीं करनी चाहिये॥ १३॥

पुनः प्रौढिंमाश्रित्य तान् प्रत्याहुस्सराजसाः ॥ १४
विमानमस्य मोचाय गगनादागमिष्यति ॥

पुनः राजसाः प्रौढिंमाश्रित्य गेरेणातिरौद्ररूपमाश्रित
तान् सात्त्विकानूचुः यदस्य शुनोमोक्षाय गगनाद्विमानमाग
मिष्यति ॥ १४ ॥

फिर राजस प्रकृतिवाले बड़े उत्तेजित होकर सात्त्विकों से बोले
कि आपलोग इसका इतना पक्ष कर रहे हैं मानो इसके मोक्ष के वास्ते
आकाश से विमान आवेगा ॥ १४ ॥

स्मित्वा ते प्रवदन्तिस्म पुनस्तान्मत्सरावृतान् ॥ १५ ॥
विमानं भवतां पूर्वमागमिष्यति निश्चितम् ॥
येषामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

ते सात्त्विकाः पुन स्तान् मत्सरान्वितान् प्रौढिमुपागतान् जनान्
स्मित्वा प्रवदन्तिस्म यत्पूर्वंभवतामेव विमानं निश्चितम् आग
मिष्यति । येषां भवतामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

वे सात्त्विक लोग उन मत्सरियों से थोड़ा हंसते हुवे फिर बोले
कि इस कुत्ते के वास्ते विमान क्यों आवेगा ? यदि विमान आवेगा तो
पहले आप लोगों के वास्ते ही, क्योंकि आप लोगों का आचार
विचार इस प्रकार बढ़ा-चढ़ा है ॥ १६ ॥

एवं तत्र जना ब्रह्मन्प्रवदन्ते परस्परम् ॥
स्वस्वभावानुरोधेन रजःसत्वतमोयुताः ॥ १७ ॥

हे ब्रह्मन् ! एवं तत्र रजःसत्वतमोयुता —
रोधेन परस्परं प्रवदन्तेस्म ॥ १

हे भ्रमन् अनन्तजी ! उस समाज के राजस तामस और सात्विक प्रकृति वाले मनुष्य अपनी २ प्रकृति के अनुकूल इस प्रकार परस्पर वादविवाद कर रहे थे ॥ १७ ॥

**तथा विवदमानेषु नानाजल्पेषु वैनृषु ॥**
**श्वस्वामी सस्मितास्यःसन् प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १८ ॥**

तथा पूर्वोक्तवत् नानाजल्पेषु जल्पं निरर्थकं वचनम् तेषु अनेक निरर्थकालापेषु विवदमानेषु परस्परं विवादयत्सु नृषु मनुष्येषु वै इति निरर्थकमव्ययमिति केवलं पादपूरणे बोध्यम् । स श्वस्वामी भिक्षुकः स्मितास्यः सन् परस्परं निष्प्रयोजनमेव विवदन्तं दलद्वयं पश्यन् दलद्वयस्थमनुजान् हसन् इतिभावः प्रदक्षिणमवर्तत प्रदक्षिणासमाप्तिमकरोत् ॥ १८ ॥

इस तरह दोनों पक्षवाले मनुष्यों में परस्पर निष्प्रयोजन विवाद हो रहा था तबतक उस कुत्ते के स्वामी भिक्षुक ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रदक्षिणा को समाप्त करलिया ॥ १८ ॥

**सर्वे सामाजिकाश्चक्रुस्तीर्थेतत्र प्रदक्षिणम् ॥**
**श्वापि स्वस्वामिना सार्द्धं चक्रे चारु प्रदक्षिणम् ॥१९॥**

तत्र तीर्थे सर्वे सामाजिकाः समाजस्था मनुष्याः प्रदक्षिणं चक्रुः श्वापि स्वस्वामिना भिक्षुकेण सह चारु इति क्रिया विशेषणं प्रदक्षिणं चक्रे ॥ १९ ॥

सभी समाज के मनुष्यों ने उस तीर्थ की प्रदक्षिणा की और उस कुत्ते ने भी अपने स्वामी के साथ प्रदक्षिणा करली ॥ १९ ॥

**यत्स्थानात्सम्यगारभ्य प्रदक्षिणमकुर्वत ॥**
**पुनस्तत्स्थानमासाद्य सर्वे विश्रांतिमागताः ॥ २० ॥**

यत् यस्मात्स्थानात् सम्यगारम्योत्थानं कृत्वा प्रदक्षिणम् कुर्वत पुनस्तत्स्थानमासाद्य तत्रागत्यच सर्वे विश्रांतिमागताः विश्रामभापुरिति ॥ २० ॥

उन मनुष्यों ने जिस स्थान से प्रदक्षिण करना आरंभ किया था फिर उसी स्थान पर आकर सबों ने विश्राम किया ॥ २० ॥

आचम्य विधिवद्वारि क्षणमात्रं स्थिताः क्षितौ ॥
श्वापि तत्र समागत्य किंचित्पीत्वा जलं शुचि ॥२१॥
समासाद्य सरस्तीरं निजेनेत्रेन्यमीलयत् ॥

विश्रांतिस्थाने समागताः सामाजिकाः वारिजले विधिवद्विधिपूर्वकमाचम्य क्षितौ क्षणमात्रं स्थिताः क्षणमात्रं तत्रैवावसन् तावत् श्वापि तत्र समागत्य शुचि पवित्रं जलं किञ्चित्पीत्वा पुनः सरस्तीरं समासाद्योपविश्य निजेनेत्रे न्यमीलयत् ॥

विश्राम स्थान पर आये हुए सभी मनुष्य जल में विधिवत् आचमन करके सरोवर के तट की भूमि पर कुछ काल तक ठहर गये तबतक वह कुत्ता भी वहां आकर उस सरोवर का पवित्र जल पीकर पुनः तीर पर आ बैठा और अपने नेत्रों को बन्द करलिया ॥

पश्यतां सर्वलोकानां विस्मयाविष्टचेतसाम् ॥ २२ ॥
अकस्मादेव विप्रेन्द्र ! सद्यः प्राणानवासृजत् ॥

हे विप्रेन्द्र ! विस्मयाविष्टचेतसाम् सर्वलोकानां पश्यताम् अकस्मादेव सरवा सद्यः तत्कालं प्राणान् अवासृज त्त्यक्तवान् ॥

हे विप्रेन्द्र ! आश्चर्य के साथ सब लोगों के देखते २ उस कुत्ते ने एकाएक अपने प्राणों को परित्याग कर दिया ॥

ततः क्षणात् समायान्तं विमानं भास्वरं दिवः ॥ २३ ॥
तत्रास्थाय स्थिरं दिव्यं तेजोरूपं समाश्रितः ॥
ययौ पश्यत्सु सर्वेषु परंधामदिवौकसाम् ॥ २४ ॥

ततस्तदनन्तरं क्षणान्मुहूर्तेनैव भास्वरं द्युतिमन्तं विमानं दिवः स्वर्गात् समायान्तं आगतवन्तं दृष्ट्वा तत्र विमाने स्थिरमास्थाय स्थित्वा दिव्यं भास्वरं तेजोरूपमाश्रितः तेजोरूपंदधार ॥ सर्वेषु जनेषु पश्यत्सु दिवौकसाम् देवानां परंधाम स्थानं देवलोकं ययौ गतवान् ॥ २४ ॥

इसके बाद क्षणभर में सुन्दर चमकता हुवा विमान आकाश से आया उसको देख उस पर सुन्दर तेजोमय रूप धारण कर दृढ़ता से बैठ गया ॥ और सब लोगों के देखते २ देवलोक को चला गया ॥ २४ ॥

उन्मुखाः केचिदासन्वै केचिदासन्पराङ्मुखाः ॥
तदृष्ट्वा महदाश्चर्यं तत्र तीर्थे द्विजोत्तम ॥ २५ ॥

हे द्विजोत्तम ! केचित् ये स्वपक्षवादिनः सात्विकास्ते तत्र तीर्थे तन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा उन्मुखाः विमानोन्मुखाः सन्तः विमानं पश्यन्त्यासन् । तथा येकेचित् स्वपक्षनिन्दकाः राजसतामसाः ते लज्जया पराङ्मुखाः अवनिम्पश्यन्त आसन् ॥ २५ ॥

जो लोग समदर्शी और गुरु के पक्ष में विचार करनेवाले सात्विक मनुष्य थे वे तो ऊर्ध्वमुख होकर इस एक अद्भुत घटना को देख रहे थे और जो राजस तामस गहनेवाले गुरु की समाज में वाहर निकाल देने में तत्पर हुए थे उन्होंने लज्जावश नीचे मुख कर लिये ॥ २५ ॥

तीर्थप्रदक्षिणान्मुक्तस्ताराऽतिभास्वरः ॥
अद्यापि दृश्यते श्वासौ ध्रुवलोके ध्रुवान्तिके ॥ २६ ॥

तीर्थप्रदक्षिणात्तीर्थप्रदक्षिणपुण्यान्मुक्तोऽसौश्वा तारैव ताराख्योऽतिभास्वरः अद्यापि ध्रुवलोके ध्रुवान्तिके ध्रुवसमीपे दृश्यते ॥ २६ ॥

तीर्थ प्रदक्षिणा के पुण्य से मुक्त होकर अर्थात् जन्म-मरण से रहित वह कुत्ता तारा रूप और अतिशय प्रकाशवान होकर ध्रुवलोक में ध्रुव तारे के समीप आजतक दीख पड़ता है ॥ २६ ॥

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं कथितं ते द्विजोत्तम ॥
सर्व पाप हरं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २७ ॥

हे द्विजोत्तम नृणां सर्वपापहरं तीर्थस्यैतन्माहात्म्यं ते तुभ्यं मया कथितं भूयः पुनः श्रोतुमिच्छसि किम् ? ॥ २७ ॥

हे द्विजोत्तम ! मनुष्यों के सब पापों को हरण करनेवाला यह तीर्थ माहात्म्य मैं ने तुम से कहा है क्या फिर भी किसी कथा को सुनने की इच्छा करते हो ? ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ।

—:०:—

# अथषष्ठाध्यायविवृतिः।

(सूत उवाच)

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रहृष्टः कुंभसंभवः ॥
पुनः पप्रच्छ तं देवं तीर्थमाहात्म्यमुत्तम् ॥ १ ॥

कुंभसंभवोऽथगस्त्यः तस्य स्कन्दस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः प्रहर्षमाप पुनरुत्तमन्तीर्थमाहात्म्यं तं देवं स्कन्दं पप्रच्छ ॥ १ ॥

इस अध्याय में सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि अगस्त्य मुनि स्कन्ददेव की यह वाणी (फिर तुम क्या सुनना चाहते हो) सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उत्तम तीर्थ माहात्म्य को फिर पूछा ॥ १ ॥

यत्रैव किंचित्संप्राप्तं येनकेनैतदुत्तमात् ॥
तीर्थात्तन्मे समाचक्ष्व मनः प्रत्ययकारकम् ॥ २ ॥

हे देव ! एतदुत्तमात्तीर्थाद्यत्रैव येनकेन प्राणिना यत्किंचित्सं प्राप्तं शुभमशुभम्वा तन्मनःप्रत्ययकारकं विश्वासयोग्यम्मे समाचक्ष्व ॥ २ ॥

हे स्कन्ददेव ! इस उत्तम तीर्थ के सेवन से यहीं पर जिन किसी ने शुभ या अशुभ जो कुछ प्राप्त किया है वह मन के विश्वास योग्य मुझे बताइये ॥ २ ॥

पृष्टः पुनर्हृष्टः पार्वतीनन्दनोमुनिः ॥
... पुरावृत्तं पुराणादि पुरःस्थितं ॥ ३ ॥

तीर्थप्रदक्षिणान्मुक्तास्ताराख्पोऽतिभास्वरः ॥
अद्यापि दृश्यते श्वासौ ध्रुवलोके ध्रुवान्तिके ॥ २६ ॥

तीर्थप्रदक्षिणात्तीर्थप्रदक्षिणपुण्यान्मुक्तोऽसौश्वा सारमेयः ताराख्पोऽतिभास्वरः अद्यापि ध्रुवलोके ध्रुवान्तिके ध्रुवसमीपे दृश्यते ॥ २६ ॥

तीर्थ प्रदक्षिणा के पुण्य से मुक्त होकर अर्थात् जन्म-मरण से रहित यह कुत्ता तारा रूप और अतिशय प्रकाशवान होकर ध्रुवलोक में ध्रुव तारे के समीप आजतक दीख पड़ता है ॥ २६ ॥

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं कथितं ते द्विजोत्तम ॥
सर्व पाप हरं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २७ ॥

हे द्विजोत्तम नृणां सर्वपापहरं तीर्थस्यैतन्माहात्म्यं ते तुभ्यं मया कथितं भूयः पुनः श्रोतुमिच्छसि किम् ? ॥ २७ ॥

हे द्विजोत्तम ! मनुष्यों के सब पापों को हरण करनेवाला यह तीर्थ माहात्म्य मैं ने तुम से कहा है क्या फिर भी किसी कथा को सुनने की इच्छा करते हो ? ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ।

# अथषष्ठाध्यायविवृतिः।

(सूत उवाच)

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रहृष्टः कुंभसंभवः ॥
पुनः पप्रच्छ तं देवं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

कुंभसंभवोऽगस्त्यः तस्य स्कन्दस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः प्रहर्षमाप पुनरुत्तमन्तीर्थमाहात्म्यं तं देवं स्कन्दं पप्रच्छ ॥ १ ॥

इस अध्याय में सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि अगस्त्य मुनि स्कन्ददेव की यह वाणी (फिर तुम क्या सुनना चाहते हो) सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उत्तम तीर्थ माहात्म्य को फिर पूछा ॥ १ ॥

अत्रैव किंचित्संप्राप्तं येनकेनैतदुत्तमात् ॥
तीर्थात्तन्मे समाचक्ष्व मनः प्रत्ययकारकम् ॥ २ ॥

हे देव! एतदुत्तमात्तीर्थादत्रैव येनकेन प्राणिना यत्किंचित्संप्राप्तं शुभमशुभम्वा तन्मनःप्रत्ययकारकं विश्वासयोग्यम्मे समाचक्ष्व ॥ २ ॥

हे स्कन्ददेव! इस उत्तम तीर्थ के सेवन से यहीं पर जिस किसी ने शुभ या अशुभ जो कुछ प्राप्त किया है वह मन के विश्वास योग्य कथा मुझे बताइये ॥ २ ॥

इति पृष्टः पुनर्हृष्टः पार्वतीनन्दनोमुनिः ॥
प्राह पुण्यं पुरावृत्तं पुराणर्षि पुरःस्थितं ॥ ३ ॥

इति एवं पृष्टः पार्वतीनन्दनोमुनिस्कन्दः हृष्टः प्रहृष्टमनाः पुरः संस्थितं पुराणर्षिं अगस्त्यंप्रति पुराकृतं पुरातनं पुण्यं पवित्रं पृच्छान्तं पुनः प्राह उवाच ॥ ३ ॥

सूतजी अपने श्रोताओं से बोले कि इस प्रकार जब अगस्त्यजी ने स्कन्द भगवान् से प्रश्न किया तो पार्वतीनन्दन भगवान् स्कन्दजी ने पुरस्थित पुराणर्षि अगस्त्य से प्रसन्न होकर पवित्र और प्राचीन इतिहास को सुनाया ॥ ३ ॥

(स्कन्द उवाच)

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तं कथानकम् ॥
एकस्मिन्दिवसे पुण्ये देशे गुर्जरमण्डले ॥ ४ ॥

हे विप्र ! पुरावृत्तं पुरातनं कथानकं प्रवक्ष्यामि कथयामि शृणु । एकस्मिन् पावने गुर्जरमण्डले देशे पुण्ये अर्थात् पवित्र ॥ ४ ॥

हे विप्र ! एक पुरातन [illegible] कहता हूँ, सुनो ( [illegible] देश में एक [illegible] ॥ ४ ॥

अस्ति श्री [illegible] ॥
[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible]

सर्व देशशिरोरत्नभूत सदलकोपमम् ॥

तद्देशे अर्थात् गुर्जरे देशे नाना हर्म्यसमाकुलम् अनेक धनि भवनेन सुशोभितम् " हर्म्यन्तु धनिनां वासः इत्यमरोक्त्या " सर्वदेशशिरोरत्नभूतं लक्ष्मीनिवासस्थानादिति अलकोपमं अलका-पुरी कुबेरनगरी तद्वदस्ति तत् पुरं ग्रामं जयति सर्वोत्कर्षेण विराजते ॥६

उस गुर्जर देश में अनेकानेक उत्तम उत्तम गृहों से सुशोभित सब देशों का मुकुट अलकापुरी सदृश एक ग्राम था ॥ ६ ॥

यस्य हर्म्यस्थलेष्वद्धा गौराङ्ग्यः संचरन्तिहि ॥
शारदाभ्रप्रविष्टानां क्षिपन्त्योविद्युतां द्युतिम् ॥ ७ ॥

यस्य पुरस्य हर्म्यस्थलेषु हर्म्यप्रदेशेषु अद्धा साक्षात् शार-दाभ्रप्रविष्टानां विद्युतां शारदीयमेघमध्यात्प्रोद्गतानां सौदामिनीनां द्युतिं छविं क्षिपन्त्यः सर्वतः प्रसारयन्त्यो गौराङ्ग्यस्सुन्दर्यः सञ्चरन्ति इतस्ततोभ्रमन्तिस्म हीति पादपूरकः । अस्यार्थभावः यथा शुभ्रवर्णेशारदीयाभ्रे इत उतः स्वकान्तिमुद्गिरन्त्याश्चपलायाः परिभ्रमणं सम्पद्यते तथैवास्यग्रामस्य शारदीयाभ्रसंनिभ धवलहर्म्य-प्रदेशेषु विद्युद्विकाससदृशीनां कामिनीनामपि गमनमासीत् ॥ ७

जिस ग्राम के धनिक गृहों में सुन्दर २ स्त्रियां शरद्काल के मेघ में स्थित बिजली की तरह अपनी मनोहर सुन्दरता से चमकती हुई फिरती थी ॥ ७ ॥

नराश्चेयप्रभा यत्र नार्योदेवीसमानभाः ॥
गृहा अभ्रंलिहा यत्र स्वारामा नन्दनप्रभाः ॥ ८ ॥

यत्र पुरे नरा मनुष्या देवप्रभा देवसन्निभा आसन् नार्य्य स्त्रियो देवीसन्निभाः पातिव्रतादि सद्गुणसंपन्ना देवी तुल्या आसन् गृहा अभ्रं लिहन्तीति अभ्रंलिहा आकाशगामिन आसन् तत्पुरे आरामाः नन्दनप्रभानन्दनोपमा आसन् ॥ ८ ॥

जिस ग्राम के मनुष्य अपने सत् सदाचार से देव तुल्य थे और नारियां अपने पातिव्रतादि धर्मों से देवी सदृश थीं, गृह आकाश को चूम रहे थे, वृक्ष वाटिकाएं नन्दनवन के सदृश थीं ॥ ८ ॥

**तस्मिन्पुरवरे विप्र ! वैश्योऽभूद्धनदोपमः ॥**
**यज्वा दांतो दानशीलो वणिग्वृत्तिविशारदः ॥ ६ ॥**

हे विप्र ! तस्मिन्पुरवरे वणिग्वृत्तिविशारदः वणिग्व्यापारदक्षो दानशीलोदांतोयज्वा अनवरतयज्ञकर्मप्रवृत्तोधनदस्य कुबेरस्य उपमैवोपमा यस्य तथाविधः कश्चिद्वैश्योऽभूत् ॥ ६ ॥

हे विप्र ! उस ग्राम में एक वैश्य जो धन में कुबेर के सदृश था नित्य यज्ञ कर्म करनेवाला दाता और दयाशील तथा वणिक् वृत्ति को पूर्ण रीति से जाननेवाला था ॥ ९ ॥

**वणिग्वृत्यातेन धनं गृहेषु बहु संचितम् ॥**
**धनस्य तस्य षष्ठांशं कृष्णार्थे सचकारह ॥ १० ॥**

तेन वणिजा वणिग्वृत्या व्यापारमार्गेण गृहेषु बहुधनं संचितम् एकत्रितम् । तस्य धनस्य षष्ठांशं करवत् कृष्णार्थे स चकारह कृष्णार्पणमकरोत् ॥ १० ॥

उस वैश्य ने व्यापार से बहुत धन संचय किया और उस धन का षष्ठांश राज-कर की तरह कृष्णार्पण किया करता था ॥ १० ॥

दिव्यान्देवालयांश्चापि कारयामास वैश्यजः ॥ ११ ॥

स्ववसोः स्वकीयधनस्य तेन अंशेन धनषष्ठांशेन वैश्यजः वापीकूपसरांसि वापीकूपतडागादीन् दिव्यान् मनोहरान्देवालयान् देवमन्दिराणिच कारयामास ॥ ११ ॥

उस श्रीकृष्णार्पित धन के षष्ठांश से वह वैश्य वापी कूप तडाग और सुन्दर सुन्दर देवालयों को बनवाता था ॥ ११ ॥

नाना विधानि दानानि चक्रे शास्त्रोक्तमार्गतः ॥
तथान्नसत्रं विदधे क्षुधितेभ्योदिवानिशम् ॥ १२ ॥

शास्त्रोक्तमार्गतोनानाविधानि दानानि चक्रे तथा क्षुधितेभ्यो दिवानिशम् अन्नसत्रं अन्नमयंयज्ञं विदधे ॥ १२ ॥

वह वैश्य शास्त्रोक्त विधान से अनेक प्रकार के दान करता था और क्षुधितों के लिये दिनरात अन्न दान करता रहता था ॥ १२ ॥

एवं प्रवर्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तम ॥
पुत्राः पंचाऽभवन्भव्याः बहुदाक्षिण्यसंयुताः ॥ १३ ॥

हे सत्तम ! एवं प्रवर्तमानस्य सुकृतरतस्य तस्य वणिजः ! भव्याः मनोहराः अतिसुचतुराः पंच पुत्रा अभवन् ॥ १३ ॥

इस तरह सुकर्म में तत्पर रहनेवाले उस वैश्य के उत्तम २ गुणों से संयुक्त सुन्दर २ पांच पुत्र हुए ॥ १३ ॥

एतेषां ज्येष्ठ आसीद्यः मजन्मान्धस्स्वकर्मणा ॥
बुद्धिमान् सुविवेकश्च सर्वाङ्गेषु सुन्दरः ॥ १४ ॥

एतेषां पुत्राणां मध्ये यः ज्येष्ठः पुत्रः स स्वकर्मणा स्वकीय पूर्वजन्माचरितकर्मणा जन्मान्धोऽपि सर्वेषु अंगेषु सुन्दरः कमनीयः सुविवेकः सुज्ञानी बुद्धिमांश्चासीत् ॥ १४ ॥

उन पांचों पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों के वश जन्मांध था परन्तु सब अंगो से सुन्दर और सद्विचार सद्बुद्धि से युक्त था ॥ १४ ॥

**पंचपुत्रेण वणिजा वसता तत्पुरोत्तमे ॥**
**अन्धोऽपिनिजपुत्रोऽसौ धनयोगेन भूरिणा ॥ १५ ॥**
**विवाहितोवरां कन्यां स्व सम्बन्धिकुलोद्भवाम् ॥**

स्वकीयेन पंचपुत्रेणसह तत्पुरोत्तमे वसता तेन वणिजा वैश्येन भूरिणा धनयोगेन भूरिद्रव्यदानेन स्व सम्बन्धिकुलोद्भवां वरां श्रेष्ठां कन्यां अन्धोप्यसौ निजपुत्रोविवाहितः ॥

अपने पांचों पुत्रों के साथ उस उत्तम नगर में रहनेवाले उस वैश्य ने बहुत धन देकर अपने सम्बन्धी की एक सुन्दरी कन्या से अन्धे पुत्र का भी विवाह कर दिया।

**सा सती तं स्वभर्तारं सिषेवे शुद्धमानसा ॥ १६ ॥**
**वैचित्रवीर्यराजानं गांधारीव पतिव्रता ॥**

( स्पष्टम् )

वह पतिव्रता कन्या अपने अन्धे पति की सेवा शुद्ध मन से करती थी जैसे राजा विचित्रवीर्य की पतिव्रता गान्धारी ने सेवा की थी।

**तस्यां तस्यापि सत्पुत्रा बभूवुर्बहुदक्षिणाः ॥ १७ ॥**
**ईश्वरस्य प्रसादेन स्वेन पुण्येन कर्मणा ॥**

( स्पष्टम् )

भगवान की कृपा और उसके पुण्य कर्म के बल से उस स्त्री ने उस अन्धे से भी बहुत गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥

एवं प्रयत्नेनस्तस्य सत्पुत्रस्यच सत्पितुः ॥ १८ ॥
कालोमहान्व्यतीयाय बहुभोगभुजोभुवि ॥

एवं प्रयततः गार्हस्थ्यधर्मं वर्तयतोबहुभोगभुजस्तस्य सत्पुत्रस्य सत्पितुश्च महान्कालोव्यतीयाय ॥

इस तरह गार्हस्थ्य धर्म का परिपालन करते हुए और अनेक उत्तम भोगों को भोगते हुए उन पिता पुत्रों को बहुत दिन बीत गये ॥

महामौल्येन यत्क्रीतं नाना देशसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
धनं धान्यं फलं वस्त्रं भुंक्तेऽसावुरुजोत्तमः ॥

महामौल्येन महार्घेण नाना देशसमुद्भवम् नाना देश जातं धनं धान्यं फलं वस्त्रं यत्क्रीतम् तदसावुरुजोत्तमः भुंक्ते भुक्तवानिति अत्र वैश्यार्थे उरुजः शब्दोवैदिकः ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्युपायास्पष्टम् ॥

महँगे भाव में उस वैश्य ने जो अनेक देशों से धन, धान्य, फल और वस्त्रादि खरीदे थे उसका वह स्वयं भोग करता था ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्य्याये मुद्राः काचप्रभानवाः ॥ २० ॥
वणिजा केन ते विप्र तद्वैश्योपायनीकृताः ॥

हे विप्र ! कस्मिँश्चित्कालपर्य्याये कस्मिंत्समये काचप्रभाः काच सदृशप्रभावन्तो नवा मुद्राः केन वणिजा वैश्येन तद्वैश्योपायनीकृता अर्थात्तस्मै वैश्यायोपहारे दत्ताः ॥

१२

एक समय की बात है कि किसी वैश्य ने काच के सदृश चमकते हुवे नये मूंग उस वैश्य को भेंट किये ॥

ये जाताः शर्करावत्यां पावनायां ध्रुवं भुवि ॥ २१ ॥
सोऽपितान्निकटीकृत्य स्वहस्तेनैव पस्पृशे ॥
तेषां स्पर्शनमात्रेण प्राक्स्मृतिः समजायत ॥ २२ ॥

ये मुद्गाः पावनायां पवित्रायां शर्करावत्यां वालुकामय्याम् भि ध्रुवं निश्चयेन जाताः उत्पन्नावभूवुः अन्धोऽपिसवैश्यस्तान् मुद्गा न्निकटीकृत्य स्वासन्नंनीत्वास्वहस्तेनैव पस्पृशे स्पर्शचकार तेषां मुद्गानां स्पर्शमात्रेण तस्य प्राक् (पूर्व जन्म समुद्भवा) स्मृति स्मरणं समजायत स्वकीय पूर्व जन्मनो ज्ञानमभूत् ॥ २२ ॥

जो मूंग उपहार में आये थे वे पवित्र वालुकामयी भूमि से उत्पन्न थे। उस अन्धे ने मूंगों की प्रशंसा सुनने के कारण उन मूंगों को अपने समीप मंगाकर निज हाथों से स्पर्श किया और स्पर्श करते ही उसको पूर्व जन्म का ज्ञान होगया ॥ २२ ॥

आलिलिंगसतान् मुद्गान् जातायां स्वस्मृतौ मुहुः ॥
महाप्रेमसमाविष्टोधुन्वन्मूर्धानमात्मनः ॥ २३ ॥

एवं स्वस्मृतौ जातायां सोन्धोवणिक् महाप्रेमसमाविष्टो मुहुरात्मनोमूर्द्धानं मस्तकं धुन्वन्कंपयन्तान्मुद्गानालिलिंग हृदा स्पर्शचकार ॥ २३ ॥

पूर्वजन्म की स्मृति हो जाने पर उस अन्धे वणिक् ने अत्यन्त प्रेम से गद्गद् हो अपने मस्तक को बारम्बार कंपता हुवा उन मूंगों को हृदय से लगा लिया ॥ २३

एवं विचेष्टमानं तं दृष्ट्वासर्वेसमीपगाः ॥
ग्रहिलत्वंमन्यमाना आसन् सर्वे सुविस्मिताः ॥ २४ ॥

एवं विचेष्टमानं विचेष्टयन्तं तमन्धं वणिजं दृष्ट्वा समीपगा स्सर्वे मनुष्याः ते ग्रहिलत्वं मन्यमानाः सुविस्मिता आश्चर्ययुक्ता आसन् ॥ २४ ॥

ऐसे आचरण करते हुए उस अंधे वणिक को देख समीप के रहनेवाले सभी मनुष्य उसे विक्षिप्त समझ आश्चर्य में पड़ गये ॥२४॥

पप्रच्छुस्ते विशांश्रेष्ठं किंत्वया क्रियतेऽधिकम् ॥
अपाकरं कृपणवत् कणानां स्पर्शनं हृदा ॥ २५ ॥

ते समीपगा जनाः विशांश्रेष्ठं वणिग्वरं तमन्धं पप्रच्छुः यत् कृपणाद्दरिद्रवदिदम् कणानां क्षुद्रानां हृदा स्पर्शनं अपाकरं लज्जास्पदं कर्म त्वया किं क्रियते ॥ २५ ॥

उन मनुष्यों ने उस वणिग्वर से पूछा कि दरिद्रियों की भांति इन क्षुद्रकणों को हृदय से लगाना तुम्हारे सदृश लक्ष्मीपात्रों के लिये लज्जा की बात है, यह क्या कर रहे हो ॥ २५ ॥

एवं तेषां वचः श्रुत्वा प्रहस्य वणिजां पतिः ॥
तान्प्रत्यूचे वचः श्लक्ष्णं संशयं नाशयन्निव ॥ २६ ॥

एवं तेषां समीपवर्तिमनुष्याणां वचः वचनं श्रुत्वा वणिजां पतिरन्धः प्रहस्य विहस्य तेषां संशयं नाशयन्निव श्लक्ष्णं स्निग्धं वचस्तान्प्रत्यूचे उक्तवान् ॥ २६ ॥

इस प्रकार अपने आसपास बैठे हुए मनुष्यों के वचन सुन विहसकर उस वणिक् ने उनके सन्देहों को मानो मिटाता हुआ सुमधुर वचन बोला ॥ २६ ॥

श्रूयतां वचनं मेद्य ग्रहिलोनास्मिसत्तमाः ॥
यद्देशीया इमे मुग्दास्तद्देशे जन्म मेऽभवत् ॥ २७ ॥

हे सत्तमाः सत्पुरुषाः ! अद्य मे वचनं युष्माभिः श्रूयताम्
ग्रहिलोनास्मि इमे मुग्दा यद्देशीयास्तद्देशे मे मम जन्माऽभवत् ॥२७॥

हे सत्तम सज्जन ! मेरी बात आप लोग सुनें, मैं पागल नहीं हूं
जिस देश के ये मूंग हैं उसी देश में मेरा जन्म हुवा था ॥ २७ ॥

स्वादज्ञोस्म्यहमेतेषां भ्रामं भ्रामन्यतोऽशिताः ॥
क्षेत्रेषु परकीयेषु सस्यसम्पत्तिशालिषु ॥ २८ ॥

एते मुग्दाः सस्यसम्पत्तिशालिषु सस्यस्य सम्पत्त्य
शालन्ते इति सस्यसम्पत्तिशालीनि क्षेत्राणि तेषु बहु सस
समृद्धिशालिषु परकीयेषु क्षेत्रेषु यतो भ्रामन् भ्रामन् मया अशित
भक्षिताः अतोहमेतेषां मुग्दानां स्वादज्ञोस्मि ॥ २८ ॥

धान्य की सम्पत्ति से शोभित गृहस्थों के खेतों में घूमघूम कर मैं
इन मूंगों को खाया था इसलिये मैं इनके स्वादों को जानता हूं ॥ २८

यैरहं पुष्टिमगमं तेन मेऽतिप्रियाइमे ॥
पुनर्भवत्प्रत्ययार्थं वच्मि यत्तन्निशम्यताम् ॥ २९ ॥

येन हेतुना यैर्मुग्दैरहं पुष्टिमगमम् तेन कारणेन त इमे
मम अतिप्रियाः सन्ति भवत्प्रत्ययार्थं विश्वासार्थं यत् पुनर्वचि
कथयामि तन्निशम्यताम् ॥ २९ ॥

जिस हेतु इन मूंगों से मैं पाला-पोशा गया था इस लिये ये मूं
मुझे अत्यन्त प्रिय हैं फिर भी आप लोगों के विश्वास के लिये जो
कहता हूं सो सुनिये ॥ २९ ॥

सागरोवालुकापूर्णोमहानस्ति महीतले ॥
उत्तंकस्याश्रमः पूर्वं यत्रासीद्धि महामुनेः ॥ ३० ॥

सर्वेभ्यः स्वनिकटस्थितान्मनुष्यान्यदकथयत् । तदेवस्कन्दोऽगस्त्यं कथयति । महीतले पृथ्वीतले वालुकापूर्णोमहान् सागरोस्ति यत्र पूर्वं उत्तंकस्य महामुनेराश्रमआसीत् ॥ ३० ॥

इस पृथ्वी तल में बालू से भरा हुआ एक बहुत बड़ा सागर था जहाँ पर महामुनि उत्तंक का आश्रम था ॥ ३० ॥

तद्देशेस्ति महातीर्थं वारुण्यां दिशि सत्तमाः ॥
कपिलायतनं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥

तद्देशे तत्प्रदेशे अत्रदेशशब्दस्तत्स्थानवाचकः । अर्थात् तत्स्थाने महर्षेरुत्तंकस्याश्रमाद्वारुण्यां पश्चिमस्यांदिशा वारुणी तस्यां दिशि हे सत्तमाः सज्जनाः महापातक नाशनं कपिलायतनं नाम महातीर्थमासीत् ॥ ३१ ॥

हे सज्जन ! उस प्रदेश में उत्तंक मुनि के आश्रम से पश्चिम दिशा में महापापों के नाश करनेवाला कपिलायतन नाम का एक महातीर्थ है ॥३१

तद्देशे वहवः सन्ति कृष्णसारा मृगोत्तमाः ॥
मृगोहमासं तत्तीर्थे कृष्णसारोमदोद्धतः ॥ ३२ ॥

तद्देशे मृगोत्तमाः मृगेषूत्तमाः बहवः कृष्णसाराः कृष्णसारनामकमृगाः सन्ति तत्तीर्थे कपिलायतननामके अहमपि मदोद्धतः कृष्णसारोमृगः आसम् ॥ ३२ ॥

उस स्थान के मृगों में उत्तम कृष्णसार मृग बहुत होते हैं उस तीर्थ में मैं भी उन्हीं मृगों में मदोन्मत्त एक कृष्णसार मृग था ॥ ३२ ॥

तृणानि चरतोऽरण्ये मृगीभिः सहितस्यमे ॥
जन्तुदंशोद्भवाः खर्जूः शिरः श्रुत्योरजायत ॥ ३३ ॥

अरण्ये वने मृगीभिः सहितस्य तृणानि चरतोमे शिरः श्रुत्योः मस्तके कर्णयोश्च जन्तुदंशोद्भवा-जन्तुदंशनज्जाता खर्जूरजायत ॥ ३३ ॥

वन में मृगियों के साथ तृणों को चरता था तब मेरे शिर और कानों में किसी जन्तु के काटने से खाज उत्पन्न होगई ॥ ३३ ॥

ततः कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्रे वृत्तकोटरे ॥
वारं वारं शिरोघर्षं चक्रेतत्पशुबुद्धितः ॥ ३४ ॥

ततस्तदनन्तरं कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्रे वृक्षकोटरे वृक्षशाखे पशुबुद्धितः अज्ञानात् वारं वारं शिरोघर्षं शिरस्संघर्षणं चक्रे ॥३४॥

तिसके बाद वृक्ष की त्रिवांक कोटर में अज्ञानवश खाज मिटाने के हेतु बारबार मस्तक को रगड़ा ॥ ३४ ॥

ततः शिरोमे संसक्तं वक्रेतद्वृक्षकोटरे ॥
अत्यर्थं चकितोद्विग्नोबलान्निस्सारयन् शिरः ॥ ३५ ॥
श्वासोच्छ्वासकृतायासः सहसा पतितोभुवि ॥
ततश्शरीमत्यजं विलुठन् सन्नितस्ततः ॥ ३६ ॥

ततस्तदनन्तरं वक्रे तद्वृक्षकोटरे तद्वृक्षीयवक्रशाखायां मे मम शिरः संसक्तं संलग्नंजातं । तच्छिरो बलान्निस्सारयन्नत्यर्थमतिशयेन चकित आकस्मिकघटनांत्रास उद्विग्नश्च एवं श्वासोच्छ्वा उद्वेगवशात् श्वासोच्छ्वासश्चसंजातस्तस्मादायासः संजात भुविपतितः शिरोमे वक्रकोटरे ... मेवास्थि ... शरीरमत्यजम् शरीरत्यागमकरवम ॥ ३५ ३६ ॥

तिसके बाद मेरा शिर उस वृक्ष के बांके-टेढे कोटर में फंसगया इस आकस्मिक घटना से एकाएक चकित और व्याकुल होकर जोरजोर से अपने मस्तक को बाहर खींचने लगा। ऐसा करने से मेरा दम घुटने लगा और मैं थक कर जमीन पर लटक गया और इधर उधर मेरा शरीर लुढ़कने लगा इसी दशा में मेरा शरीर पात होगया ( प्राण शरीर को त्याग कर गये ) ॥ ३५. ३६ ॥

तत्सर्वं स्वप्नवत्प्रेक्ष्ये पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥
तद्देशोत्पन्नमुग्दानां स्पर्शनादेव सत्तमाः ॥ ३७ ॥

हे सत्तमाः! तत्सर्वं पूर्वजन्मविचेष्टितम् पूर्वजन्मकृतं स्वप्नवदिदानीम् तद्देशोत्पन्नमुग्दानां स्पर्शनादेव प्रेक्ष्ये प्रपश्यामि ॥३७॥

हे सत्तम! यह सब पूर्वजन्म की बात उस देश के मूंगों को स्पर्श करने से मैं स्वप्न के ऐसा देख रहा हूं ॥ ३७ ॥

तस्मादेतान् प्रियतमान् श्लेष्यामिव पुनः पुनः ॥
एतत्सर्वं मयाप्रोक्तं भवच्छंकापनुत्तये ॥ ३८ ॥

तस्मात्कारणात् एतान् प्रियतमान् मुग्दान् पुनः पुनर्वारं वारं श्लेष्यामि एतत्सर्वं मया भवच्छंकापनुत्तये भवच्छंका निवारणाय प्रोक्तम् ॥ ३८ ॥

इसीलिये इन प्रियतम मूंगों को बारबार हृदय से लगा रहा हूं ये सब बातें आप लोगों की शंका छुड़ाने के हेतु मैंने कही हैं ॥ ३८ ॥

पुनर्वदामि यज्जातं सावधानैर्निशम्यताम् ॥
मृतं शरीरं मे तत्र श्वशृगालैः प्रभक्षितम् ॥ ३९ ॥

पुनः शरीरपातानन्तरं यज्जातं तत् सावधानैः निशम्यताम् श्रूयताम्। तत्र तीर्थे मम मृतं शरीरं श्वगृगालैः प्रभक्षितम् ॥३९

मेरा शरीर पात होने के बाद जो हुवा सो कहता हूं सावधान होकर सुनिये ! उस तीर्थ में कुत्ते और शृगालों ने मेरे मृतशरीर को भक्षण किया ॥ ३९ ॥

जलप्रवाहैर्बहुलैः प्रावृट्काले घनाकुले ॥
प्रक्षिप्तानितदस्थीनि कापिलीये सरोवरे ॥ ४० ॥

घनाकुले सर्वतोमेघाविष्टे प्रावृट्काले वर्षतो बहुलैर्जल प्रवाहै रेतदस्थीनि मम मृतदेहस्य कापिलीये सरोवरे प्रक्षिप्तानि ॥ ४० ॥

सर्वतो मेघाच्छन्न वर्षाकाल में जब अति वेग से जल का प्रवाह चला तो मेरे शरीर की हड्डियां बहकर कपिल सरोवर में पड़ गई ॥ ४० ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्याज्जातोहं वणिजांकुले ॥
धनिनां पुण्यकर्तॄणां महाभोगभुजांभुवि ॥ ४१ ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्यादहंभुवि महाभोगभुजां पुण्यकर्तॄणां धनीनां वणिजां कुले जात उत्पन्नः ॥ ४१ ॥

उस उत्तम तीर्थ के माहात्म्य से इस पृथ्वी में महाभोगशाली पुण्यकर्मा और धनी वैश्य के कुल में मेरा जन्म हुवा ॥ ४१ ॥

एतत्सर्वं समाख्यातं भवतां प्रीतयेऽनघाः ॥
मदुक्तंचेन्नमन्यध्वं गत्वा पश्यथ सत्वरम् ॥ ४२ ॥

हे अनघाः पुण्यजनाः एतत्सर्वं भवतां प्रीतये मया समाख्यातं चेन्मदुक्तं न मन्यध्वं तदा सत्वरं गत्वा पश्यथ ॥ ४२ ॥

ऐ पुण्यशाली निकटवर्तियो ! यह कथा आपलोगों की प्रसन्नता और प्रतीति के लिये मैं ने कही है यदि मेरे कहने पर विश्वास नहीं है तो इसी समय जाकर देख लीजिये कि मेरा शिर अबतक उस वृक्षकोटर में पड़ा है ॥ ४३ ॥

ततः सर्वे विस्मितास्ते तत्पित्रे संन्यवेदयन् ॥
पिता सर्वान् संदिदेश सत्वरं गम्यतामिति ॥ ४३ ॥

ततस्तदनन्तरम्विस्मिता आश्चर्यङ्गतास्ते सर्वे तत्समीपवर्त्तिनो जनाः तत्पित्रे संन्यवेदयन् पिताच सत्वरं शीघ्रं गम्यतामिति सर्वान्संदिदेश आज्ञप्तवान् ॥ ४३ ॥

इसके बाद उस अन्धे वणिक् के निकटवर्ती सभी मनुष्यों ने आश्चर्य माना और इन सब बातों को उसके पिता से कहा, पिता ने उसी समय सब को उस तीर्थ में जाने की आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

यियासूंस्तानभिप्रेत्य पुनरन्धोऽब्रवीदिदम् ॥
निष्कास्य मच्छिरः सद्भिस्तस्माद्वृक्षस्य कोटरात् ॥४४॥
प्रक्षेप्यं शलिले शुद्धे तत्तीर्थीये महाद्भुते ॥
ततोयज्ञायितत्त्वमागता द्रक्ष्यथ द्रुतम् ॥ ४५ ॥

तान् पित्राज्ञप्तान् मनुष्यान् यियासूनभिप्रेत्यार्थादिमेऽवश्यं गमिष्यन्तीति वृद्धान्धःपुनरब्रवीद्वचत् यद्यस्यवृक्षस्य कोटरान्मच्छिरोनिष्कास्य सद्भिस्साधुभिर्भवद्भिर्महाद्भुते तत्तीर्थीये शुद्धे शलिले जले प्रक्षिप्य ततोयज्ञापि तदागता यूयं द्रुतम् शीघ्रं द्रक्ष्यथ ॥ ४४, ४५ ॥

पिता से आज्ञा पाकर उस तीर्थ पर जाने के लिये उद्यत उन मनुष्यों को जान, उस अन्धे ने फिर कहा कि मेरा शिर जो अबतक उस वृक्ष के कोटर में फंसा हुआ है उसे निकाल कर उस महान् आश्चर्यकारी तीर्थ के शुद्ध जल में डाल देना तब जो होगा सो यहीं आने पर आप लोग शीघ्र ही देखना ॥ ४४, ४५ ॥

ततस्ते तदनुज्ञाता हृष्टास्तं देशमागमन् ॥
तत्तीर्थवरमासाद्य वृक्षं वृक्षमपातयन् ॥ ४६ ॥

ततस्तदनन्तरं तदनुज्ञातास्तत्पित्रानुज्ञातास्ते हृष्टाः प्रसन्नमानसास्तं देशं आगमन् तत्तीर्थवरमासाद्य प्राप्त्वा वृक्षं वृक्षं व्यलोकयन् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर उसके पिता की आज्ञा पा प्रसन्न होकर वे मनुष्य उस देश में गये और उस तीर्थ के प्रत्येक वृक्ष में उस का शिर ढूंढने लगे ॥ ४६ ॥

कस्मिँश्चिद्वृक्षकुहरे मार्गयद्भिस्त्वरान्वितैः ॥
दृष्टं मार्गं शिरः शुष्कं सशृङ्गं हृष्टमानसाः ॥ ४७ ॥
गृहीत्वा तच्छिरश्शीघ्रं तस्य वैश्यस्य वाक्यतः ॥
प्राक्षिपन्तीर्थशलिले किं भवेदिति विस्मिताः ॥ ४८ ॥

त्वरान्वितैर्द्रुतं द्रुतं मार्गयद्भिरन्वेषयद्भिस्तैर्मनुजैः कस्मिँश्चि द्वृक्षकुहरे वृक्षकोटरे सशृङ्गं शुष्कं मार्गं शिरोमृगमस्तकं दृष्टम् । हृष्टमानसास्ते तस्य वैश्यस्य वाक्यतस्तद्वचनप्रमाणाच्छीघ्रं तच्छिरोगृहीत्वा तीर्थशलिले प्राक्षिपत् ततः किंभवेदित्यवलोकनार्थम्विस्मिता बभूवुः ॥ ४७, ४८ ॥

अति शीघ्रता से मृग मस्तक को ढूँढते हुए उन मनुष्यों ने किसी वृक्ष के कोटर (पोल) में सूखा हुआ मृग का शिर शृङ्ग सहित देखा और हर्षित हो उसे निकाल उस तीर्थ के जल में छोड़ दिया । इसके बाद क्या होता है यह देखने के लिये, विस्मित होगये ॥ ४७, ४८ ॥

शिरसिक्षिप्तमात्रेतु तत्तीर्थीयमहाजले ॥
अंधः पयोजपत्राक्षः सद्योजातो गृहे स्वनः ॥ ४९ ॥

तत्तीर्थीय महाजले प्रक्षिप्तमात्रे शिरसि तस्यैवोपरि स्वतः स्वयमेव पयोजः कमलं तस्य पत्रे नष्टघिर्णी यस्य स कमलपत्रनेत्रः समभवत्सुलोचनः ॥ ४८ ॥

उस तीर्थ के मनोहर जल में उसका मस्तक पड़ते ही वहां अपने घर पर उस अन्धे के दोनों नेत्र अपनेआप ही। सुन्दर कमल के पत्तों के सदृश स्वच्छ होगए ॥ ४९ ॥

तत्र तत्परसतां नृणां रोमाञ्चं समजायत ॥
धैर्यं निवेश्य तत्तीर्थे देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥ ५० ॥

तत्र तत्परसतां नृणां मनुष्याणां रोमाञ्चं समजायत । अथ धैर्यं धृत्वा सर्वे ... अन्धपिता स ... तत्तीर्थे निवेश्य तत्तीर्थे स्नात्वा तत्र देहं त्यक्त्वा दिवं स्वर्गं ययौ ॥ ५० ॥

इस महान आश्चर्यकारी दृश्य को देख सबको रोमाञ्च होगया और उस अन्धे का पिता उसी समय सुत त्याग कर ... स्नान करने चला गया । वहीं कुछ दिन तीर्थ सेवन कर स्वर्ग को गया ॥ ५० ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा गर्भमाहात्म्यसूचकम् ॥
नरस्तु शुद्धेन मनसा ज्ञानमुक्तोऽनुगाम् ॥ ५२ ॥

[illegible] शुद्धेन [illegible]
[illegible] ॥ ५३ ॥

इस [illegible]
[illegible] ॥ ५३ ॥

इति [illegible]
[illegible]

## अथसप्तमाध्यायकथारम्भः।



( सूत उवाच )

एवमुक्त्वा पुनः प्राह स्कन्दः कुंभोद्भवंमुदा ॥
शृणु तीर्थीयमाहात्म्यं मुने किंचिन्मयोदितम् ॥ १ ॥

( स्पष्टार्थ )

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि इस प्रकार तीर्थ का माहात्म्य कहकर स्कन्दजी अगस्त्य से बोले कि हे मुनि ! मैं पुनः उस तीर्थ का माहात्म्य कुछ कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥

पुरा कदाचिदेतस्मिंस्तीर्थे स्नानं करिष्यताम् ॥
कार्तिकमासान्त्यदिनेषु पर्वपञ्चदिनेषुवै ॥ २ ॥
समाजोऽभून्मनुष्याणां नाना देशनिवासिनाम् ॥
तस्मिन्समाजे बहवस्समागाता दिदृक्षवः ॥ ३ ॥
कौटुम्बिका भिक्षवश्च साधवोऽसाधवोजनाः ॥

( स्पष्टार्थं सार्द्धद्वयमिदं पद्यम् )

पूर्व समय की कथा है कि वर्ष के ३६५ दिनों में उत्तम कार्तिक मास के अन्तिम पांच दिन हैं जिनको भीष्म पंचक कहते हैं। उन दिनों में इस तीर्थ में स्नान करनेवाले मनुष्यों का एक समाज (मेला) इकट्ठा हुआ जिसको देखने के लिये अनेक कुटुम्बी लोग, भिक्षुक लोग, साधुजन और दुर्जन सभी प्रकार के मनुष्य वहां आये थे ॥ २, ३ ॥

नरकोलाहलाकीर्णे तस्मिन्काले तपोधन ॥ ४ ॥
इतस्ततोभ्रमन्तीह नराः कौतुकमाश्रिताः ॥

( स्पष्टार्थम् )

हे तपोधन ! इस प्रकार कई देशों से आयेहुए अनेक मनुष्य कोलाहल से परिपूरित उस समाज में केवल समाजदर्शक जितने थे वे इधर उधर घूम रहे थे ॥

नाना पण्याः पदार्थास्तत्समाजे समुपागताः ॥ ५ ॥
वस्त्राणि वृषभा उष्ट्राः क्रयविक्रयकारणात् ॥
क्रेतारः केचिदायाता विक्रेतारश्च केचन ॥ ६ ॥

( स्पष्टार्थम् )

उस मेले में कई प्रकार के पदार्थ, कपड़े, बैल, ऊंट बेंचने के निमित्त लाये गये थे और कई खरीदने और बेंचनेवाले भी आए थे ॥ ६ ॥

एवं सम्मिलिते लोके कोलाहलसमाकुले ॥
दर्शन्तीह पण्यानि विक्रेतारो नरान् नरान् ॥ ७ ॥

( स्पष्टम् )

इस प्रकार कोलाहलपूर्ण जन समाज में बेंचनेवाले अपने २ क्रयपदार्थ प्रत्येक ग्राहक को दिखाते और पसन्द कराते थे ॥ ७ ॥

तत्रैकः करभः कश्चिद्दुर्दान्तः पर्वतोपमः ॥
उग्रगर्जारवंकुर्वन् सर्वप्राणि भयंकरः ॥ ८ ॥

( स्पष्टम् )

उस मेले में एक ऊंट बिकने के लिये आया था जो महादुर्दान्त और प्राणियों के देखने में महाभयंकर एवं बड़े जोर से गर्जता हुवा था ॥

तत्रैकदा स करभः क्रेतृभिः परिवारितः ॥
केतारः सम्यगूचुस्ते सर्वान्नाष्ट्रनायकान् ॥ ९ ॥

( स्पष्टार्थम् )

उस मेले में जब एक बार उस ऊंट के चारों तरफ उसको खरीदनेवाले ग्राहक जमा हुए तो उन्होंने उसके मालिक से कहा ॥९॥

वयमेनं ग्रहिष्यामो यदि यूयं प्रदास्यथ ॥
परन्तु सकृदस्मभ्यं परिभ्राम्य प्रदर्श्यताम् ॥ १० ॥

( स्पष्टम् )

यदि तुम लोग इस ऊंट को बेंचो तो हम लोग लेने को तैयार हैं परन्तु एक बार इस पर चढ़कर और थोड़ा चलाकर हम लोगों को दिखादो ॥ १० ॥

एवं तद्वचनं श्रुत्वा तत्र सामाजिको जनः ॥
न को प्येनं समारोढुं मनश्चक्रे भयान्वितः ॥ ११ ॥

( स्पष्टार्थः )

इस प्रकार ग्राहकों की बात सुनकर उस समाज के किसी मनुष्य ने भी भय के वश उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार नहीं किया ॥११॥

कस्य चिद्राजपुत्रस्य जातस्य तत्रासीद्गोलकस्थितः ॥
स आरोढुमनश्चक्रे तमुष्ट्रं मदगर्वितः ॥ १२ ॥

( स्पष्टम् )

उस समाज में एक किसी राजपूत का गोलकपुत्र था उसने जाति के अभिमान से मदगर्वित हो उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार करलिया ॥ १२ ॥

आगत्य स्वयमूचे तान् समाहूय क्रमेलकं ॥
अहमेनं समारोक्ष्ये यदि यूयं वदस्यथ ॥ १३ ॥

( स्पष्टार्थम् )

यह गोलक समाज से निकल उन ग्राहकों के सन्मुख आ ः
कहने लगा कि यदि आपलोग कहें तो मैं इस ऊंट पर चढूंगा ॥ १३

ततः सर्वैरनुज्ञातः समारोह यथेच्छया ॥
कुर्वस्मत्करणीयं त्वं प्रवीणोस्युष्ट्ररोहणे ॥ १४ ॥

( स्पष्टार्थः )

तब सब लोगों ने कहा कि खुशी से चढ़ो, तुम ऊंट पर सवारी करने में सुचतुर हो, चढ़ना तो हम लोग खरीददारों का कर्तव्य है, परन्तु यह हमारा काम तुम्हीं करदो ॥ १४ ॥

सावधानतया स्थेयमुष्ट्रोस्ति मदगर्वितः ।
निर्दोषास्मोवयं तत्र स्वेच्छयारोढुमिच्छसि ॥ १५ ॥

( स्पष्टार्थीयम् )

संभाल कर इस ऊंट पर बैठना यह ऊंट मदगर्वित है हम लोगों को दोष न देना तुम अपनी इच्छा से चढ़ना चाहते हो ॥ १५ ॥

भवद्भिर्नैव चिन्त्यं तन्मद्गृहे तादृशोष्ट्रकाः ॥
मया दृष्टाः समारूढाः कोयं स्यादुष्ट्रशावकः ॥ १६ ॥

( स्पष्टम् )

तुम लोग इसकी कुछ भी चिन्ता न करो मेरे घर ऐसे ऐसे ऊंट बहुत हैं जिनको मैंने देखा है और सवारी भी की है यह ऊंट का बच्चा क्या चीज है ॥ १५ ॥

एवं सस्मयमागत्य समारोढुं तमुष्ट्रकम् ।
संस्थाप्याकर्षयन् पृष्ठ आससाद स सत्वरः ॥ १७ ॥

( भाषार्थ )

ऐसा कह और थोड़ा हंसता हुआ वह गोलक उस ऊंट के पास आया और चढ़ने के लिये ऊंट को खींच कर बैठाया तथा अति शीघ्रता से उसकी पीठ पर बैठ गया ॥ १७ ॥

बिभ्रद्वक्रोष्णीषबंधं युवाजातिमदोद्धतः ॥
सकौतुकैः सर्वजनैर्दृष्ट आरूढणवमः ॥ १८ ॥

सो युवा जातिमदोद्धतः वक्रोष्णीषबंधं बिभ्रन् सकौतुकैः सर्वजनैः आरूढ एव दृष्टः ॥ १८ ॥

जाति के मद से उद्धत वह युवा टेढ़ी पगड़ी को धारण किये हुये जब ऊंट पर बैठ गया तब सब लोग कौतुक के साथ देखने लगे ॥ १८

अनुत्थापित एवोष्ट्रो धावने व्यवलोकितः ॥
दृष्ट्वा लघुत्वमुष्ट्रस्य तद्देवोष्ट्रिणः पुनः ॥ १९ ॥
सर्वे सामाजिका लोका विस्मयं प्रतिपेदिरे ॥

अनुत्थापित एवोष्ट्रो धावने व्यवलोकितः उष्ट्रस्य लघुत्वं विचारितं तद्देवोष्ट्रिणोऽपि क्षिप्रारोहणदक्षतां दृष्ट्वा सर्वे सामाजिका लोका समागत्य जना विस्मयमाश्चर्यं प्रतिपेदिरे प्राप्ताः ॥

अभी ऊंट को उठाया भी नहीं गया कि वह ऊंट दौड़ता हुआ निकल गया, इस तरह उस ऊंट को [illegible] तथा ऊंट पर चढ़े [illegible] देखकर [illegible] मनुष्य [illegible] ।

१४

आगत्य स्वयमुष्ट्रे तान् समाहूय कमेर
अहमेनं समारोक्ष्ये यदि यूयं वदस्यथ

( स्पष्टार्थम् )

यह गोलक समाज से निकल उन आदमों के
कहने लगा कि यदि आपलोग कहें तो मैं इस ऊंट पर

ततः सर्वेऽनुजानः समारोह यथेच्छया ॥
कुर्वस्मत्करणीयं त्वं प्रवीणोस्युष्ट्ररोहणे ॥

( स्पष्टार्थः )

तब सब लोगों ने कहा कि खुशी से चढ़ो, तुम
करने में सुचतुर हो, चढ़ना तो हम लोग खरीददारों क
परन्तु यह हमारा काम तुम्हीं करदो ॥ १४ ॥

सावधानतया स्थेयमुष्ट्रोस्ति मदगर्वितः ।
निर्दोषासमोयं तत्र ...

केचन उष्ट्रं प्रशशंसुः केचन उष्ट्रिणमुष्ट्रवाहं शशंसुः अहो ! इति आश्चर्ये। एषमहान् उष्ट्री उष्ट्रचालकः। अयं सम्यक् उष्ट्रं चालयते अयं क्रूरः करभः स्वाधीनं किंकरं युवानं पातयिष्यति ॥ २३, २४ ॥

कोई ऊंट की प्रशंसा करते थे कोई ऊंट के सवार की प्रशंसा करते थे और कहते थे कि अहा ! यह महाचतुर उष्ट्रारोही है अच्छी तरह ऊंट को चला रहा है। दीख पड़ता है कि यह क्रूर करभ उस बेचारे को कहीं अवश्य पटकदेगा ॥ २३, २४ ॥

शृण्वन्नेवं स्वकर्णाभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं ॥
पुनः संचोदयामास तमुष्ट्रंरोषयन् मदात् ॥ २५ ॥

एवं स्वकर्णाभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं पाण्डित्यं जनैः कथ्यमानं भृण्वन् स युवा मदात् रोषयन् क्रुद्धयन्तमुष्ट्रम्पुनः संचोदमास प्रेरितवान् ॥ २५ ॥

उस युवा ने इस तरह से अपनी प्रशंसा सुनते हुवे गर्व से उस ऊंट को उत्तेजित कर अति शीघ्र चलने को प्रेरित किया ॥ २५ ॥

उष्ट्रोऽपि रोषमापन्नोविकृतां गतिमास्थितः ॥
चतुर्भिश्चरणैरुच्चैरुत्पफाल पुनः पुनः ॥ २६ ॥

उष्ट्रोऽपि उष्ट्रिणः कशाघातेन पार्ष्णिपातेन च रोषमापन्नो विकृतां कुटिलांगतिं गमनमास्थितः चतुर्भिश्चरणैः पुनः पुनर्वारं वारमुच्चैरुत्पफाल ॥ २६ ॥

ऊंट भी डालियों के आघात और पैरों की ठोकर से क्रुद्ध होकर अपने चारों पैर उठा २ कर जोर से कूदने लगा ॥ २६ ॥

स उष्ट्रवलसंक्षिप्त स्वपृष्ठासनसंस्थितिः ॥
च्युतरश्मिप्रतोदोऽभूत् भयश्वेतीकृताननः ॥ २७ ॥

उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः उष्ट्रवलेन संक्षिप्ता उत्क्षिप्ता स्वपृष्ठासनस्य संस्थितिः संस्थानं यस्य स उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः करभवलोत्क्षिप्तस्वपृष्ठास्तरणः स युवा भयश्वेतीकृताननः भयेन श्वेतीकृतमाननं यस्य स च्युतरश्मि प्रतोदः रश्मिश्च प्रतोदश्च तौ च्युतौ यस्य स तथाभूतोऽभूत् ॥ २७ ॥

ऊंट के वेग से पीठ का आसन ढीला होगया, युवक के हाथ से मोहरी गिरगई और उसका मुंह भय के मारे सफेद होगया ॥२७

उष्ट्रोपिदुष्टोरुष्टस्सन् एनं द्वित्रक्रमान्तरे ॥
सुदुष्टं पातयामास पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २८ ॥

दुष्टउष्ट्रोपिरुष्टः क्रुद्धस्सन् पूर्ववैरं जन्मान्तरीयवैरमनुस्मरन् सुदुष्टं तं युवानं द्वित्रक्रमान्तरेद्वित्रपादविक्षेपे पातयामास ॥ २८ ॥

उस दुष्ट ऊंट ने क्रोधित होकर पहले के बैर को याद करते हुये दो तीन ही उच्छाल में उस दुष्ट युवा को गिरा दिया ॥ २८ ॥

एवं तस्मिन्निपतिते कौतुकाकुलचेतसः ॥
परपीड़ानभिज्ञानाः सर्वे संजहसुर्मुदा ॥ २९ ॥

एवं तस्मिन् युनि निपतितेसति परपीड़ानभिज्ञाना परस्य स्वेतरस्य पीडा तस्याअनभिज्ञानं येषां ते अननुभूतपरव्यथाः कौतुकेन आकुलानि चेतांसि येषान्ते तथोक्ताः सर्वे मुदाहर्षेण संजहसुः ॥

इस तरह ऊंट की पीठ से उस युवा के गिरजानेपर दूसरों के दर्द को न जाननेवाले हास्यरस के प्रेमी केवल तमाशा देखनेवाले सब बड़े मोद से हंसने लगे ॥ २९ ॥

तं तदा विकली भूतं शकलीकृतकीकसं ॥
उद्धृत्य वेष्टयामासुस्तदाप्ता ये च केचन ॥ ३० ॥

तदा तस्मिन्काले विकलीभूतं व्याकुलीभूतं मर्मव्यथये ति तथा शकलीकृतकीकसं खण्डखण्डीभूतास्थिकं तं युवानं तदाप्ताः ये च केचन आसंस्ते उद्धृत्योत्थाप्य वेष्टयामासुः वस्त्रेणेति शेषः ॥

जब वह युवा गिरकर मर्मवेदना से अचेत होगया तथा उसके शिर के टुकड़े टुकड़े होगये तब उसके आत्मीय जो लोग वहां थे उन्होंने उसको उठाकर कपड़े में लपेट लिया ॥ ३० ॥

वाच्यमानोऽपिनब्रूते मूर्च्छांनुमहतींगतः ॥
स क्षणंप्राप्य सुप्राणानुत्ससर्जायुषःक्षये ॥ ३१ ॥

महतीमकथनीयाम्मूर्छांगतः स युवावाच्यमानोऽपि किंचि-त्स्वव्यथां कथयेत्युक्तोऽपि नब्रूते नावदत् क्षणंप्राप्य क्षणमात्रंस्थित्वा आयुषःक्षये आयुषोह्रासे सुप्राणानुत्ससर्ज तत्याज ॥ ३१ ॥

महामूर्छा को प्राप्त वह युवा बुलाने से भी नहीं बोलता था, क्षणभर जीकर आयु के नष्ट होजाने पर अपने प्राणों को त्यागदिया ॥ ३१ ॥

क्रूरा यमभटास्तत्र मृतं तं नेतुमागताः ॥
बद्ध्वा रसनागपाशैस्तु ततः संयमनीं ययुः ॥ ३२ ॥

क्रूरा निर्दयायमभटायमदूता स्तत्र तं मृतं मृतशरीरं नेतु मागताः पुनः रसनागपाशैरन्यविशेषैरज्जुभिर्बद्ध्वा मृतशरीर बद्ध्वा ततस्तत्काले संयमनीं यमपुरीं ययुः ॥ ३२ ॥

वे निर्दयी यमदूत उसके मृत शरीर को अपने नागपाश में बान्ध कर यमपुरी में लेगये ॥ ३२ ॥

गत्वा निवेदयामासुस्तेतदारविनन्दनम् ॥
वैवस्वतस्तुतन्दृष्ट्वा चित्रगुप्तमचोदयत् ॥ ३३ ॥

ते यमदूता स्तदा तदनन्तरं तत्र यमपुर्यांगत्वा रविनन्दनं यमराजंनिवेदयामासुः वैवस्वतोयमराजस्तु तदृष्ट्वा चित्रगुप्त मचोदयत् ॥ ३३ ॥

उन यमदूतों ने उस मृतात्मा को यमराज के सन्मुख उपस्थि किया यमराज ने उसके विषय में चित्रगुप्त से पूछा ॥ ३३ ॥

पश्यास्य पुण्यं पापानि किमनेन कृतं भुवि ॥
चित्रगुप्तस्तस्य लेखं दृष्ट्वा सम्यग्विचारतः ॥ ३४ ॥
यमं निवेदयामास तस्यकर्म शुभाशुभम् ॥

हे चित्रगुप्त ! अस्य पुण्यं पापानिच त्वंपश्य अनेन भुवि किं कृतम्। चित्र गुप्तस्तस्य लेखं विचारतोविचारपूर्वकं सम्यग्दृष्ट्वा तस्य शुभाशुभं कर्म यमं निवेदयामास ॥

यमराज ने चित्रगुप्त से कहा कि इसके पुण्य और पापों को देखो कि इसने मर्त्यलोक में क्या २ किया है ? चित्रगुप्त ने उसकी दिनचर्य्या विचारपूर्वक देखी और उसके शुभाशुभ कर्मों को यमराज से निवेदन किया ॥

कृतं नानेन सत्कर्म जन्मारभ्य प्रभो ! भुवि ॥ ३५ ॥
पापमेवकृतंनूनं सर्वदा मरणावधि ॥

हे प्रभो ! भुवि मर्त्यलोके अनेन जन्मारभ्य कदापि सत्कर्म नकृतं नूनं निश्चयेन मरणावधि पापमेव कृतम् ॥

हे प्रभु ! इसने मर्त्यलोकमें जाकर जन्म से मरण तक कभी सुकृत नहीं किया, मरण पर्य्यन्त सर्वदा पाप ही पाप किये हैं ॥

एकंतु कृतमेतस्य मनः संशयतीवमे ॥ ३६ ॥
यस्मादेव महापुण्यपांशुना गात्रगुंफिनः ॥
कपिलक्षेत्रजेनाशु मृत्युमाप महेश्वर ॥ ३७ ॥

हे महेश्वर ! एतस्यतु एकं कृतं कार्य्यं मे मनः संशयति सन्देहङ्गमयत्येव यस्मात् कारणत् कपिलक्षेत्रजेन कपिलक्षेत्रसंभूतेन महापुण्यपांशुना अतिपवित्ररजसा गात्रगुंफितः गुंफितशरीरः आशु शीघ्रं मृत्युमाप ॥ ३६, ३७ ॥

हे महेश्वर ! यह कपिलक्षेत्र की धूल से धूसरित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है यही इसका एक कृत्य मेरे मन में सन्देहवत् प्रतीत होता है ॥ ३६, ३७ ॥

इति वाक्यं यमः श्रुत्वा कंपयानोनिजं शिरः ॥
प्रोवाच वचनं सर्वान्मुक्तोयं नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

यमोयमराज इति चित्रगुप्त वाक्यं श्रुत्वा निजं शिरः कंपयानः आजन्मकृतपापबन्धनेनायं मुक्तो नात्र संशय इति वाक्यं सर्वान्दूतान्प्रोवाच ॥ ३८ ॥

चित्रगुप्त का यह वाक्य सुनकर अपना मस्तक हिलाते हुए यमदेव ने अपने सभी दूतों से कहा कि यह मुक्त हो गया अपने आजन्म के किये हुए पापों से रहित हो गया इसमें कोई सन्देह नहीं ॥३८॥

भोदूताः ! भवतां हस्तस्वादस्तु विगतोऽधुना ॥
नायं मारयितुंशक्योभवद्भिर्वैकदाचन ॥ ३६ ॥

( स्पष्टम् )

हे दूतगण ! अब तुम लोगों के हाथों का स्वाद गया, तुम लोग इसको कभी नहीं मार-पीट सकते ॥ ३९ ॥

तथा रजांसि त्रीण्येव पवित्राणीह भूतले ॥
एकं व्रजरजः पुण्यं चित्रकूटरजस्तथा ॥ ४० ॥
कपिलालयजं तद्वत्पवित्रं सर्वमुक्तिदम् ॥

इह भूतले त्रीण्येवरजांसि तथापवित्राणि एकं व्रजरजः पुण्यं तथा चित्रकूटरजः पवित्रं तद्वत्सर्वमुक्तिदङ्कपिलालयजंरजः पवित्रमस्ति ॥

इस पृथ्वी में तीन ही रज पवित्र हैं एक तो व्रजरज, दूसरा चित्रकूट का रज और तीसरा सब को मुक्ति देनेवाला कपिलालय का रज ॥

तस्मात्पुण्यतरेदेशे पुरे पुण्यकुलेतथा ॥ ४१ ॥
पुण्ये गृहे पुण्यवति जन्मैतस्यप्रदीयताम् ॥

( स्पष्टम् )

इस कारण से पवित्र देश, पवित्र ग्राम, पवित्र कुल और पवित्र घर में इसका जन्म दो ॥

एवमुक्ते यमेनाशु सदासौगतपातकः ॥ ४२ ॥
विदर्भदेशेषूत्पन्नः कुंडिने नगरे वरे ॥
तथा पुण्यवताम्वंशे वणिजां पुण्यपूजिते ॥ ४३ ॥
महाशीलगृहेजातः सुशीलागर्भसंभवः ॥
चारुशील इतिख्यातोऽभवत् सार्थाभिधानवान् ॥ ४४ ॥

आशु शीघ्रं यमेनैवमुक्तेसति सदा सर्वस्मिन्काले गतपातको विगतपापोऽसौ विदर्भदेशेषु वरे उत्तमे कुण्डिने नगरे तथा पुण्यवतां पवित्राणां वणिजां वैश्यनां पुण्यपूजिते महापवित्रे वंशे महाशीलनाम्नोवैश्यस्य गृहे सुशीलाया स्तत्पत्न्या गर्भसंभवः चारुशील इतिख्यातः प्रसिद्धनामा सार्थाभिधानवान् नामानुरूप-गुणः उत्पन्नोऽभवत् ॥ ४३, ४४ ॥

यमराज के कहने पर उसी समय निष्पाप होकर वह मृत युवा वैदर्भ देश के पवित्र कुण्डिन नगर में और पवित्र वैश्य वंश में महाशील नामक वैश्य के गृह में उसकी स्त्री सुशीला के गर्भ से उत्पन्न हुआ, जिसका नाम चारुशील रखागया और नामानुरूप उसके गुण हुए ॥

दयावान् दानशीलश्च सुन्दरोवृद्धसेवकः ॥
पिता विवाहयामास सारशीलांविशःसुताम् ॥ ४५ ॥

स चारुशीलनामा वैश्यसुतोदयावान् दानशीलः उदार प्रकृतिकः सुन्दरोरूपसम्पत्तिसम्पन्नोवृद्धसेवकश्चसंजातः तस्य पिता सारशीलां सारशीलानाम्नींविशः सुतां वणिक्कन्यां विवाहयामास ॥ ४५ ॥

वह चारुशील नाम का वैश्यपुत्र दयावान दानशील सुन्दर और वृद्धों की सेवा करने वाला हुवा। उसके पिता ने उसका विवाह सारशीला नाम की एक वैश्य कन्या से करदिया ॥

सापि पतिव्रताह्यासीत्तस्य पुण्यप्रभावतः ॥
यदा सौ यौवनावस्थः संजातो भुवि भूरिदः ॥ ४६ ॥

( स्पष्टम् )

. वह भी सारशीला अपने पति के पुण्य प्रभाव से पतिव्रता हुई। जबवह चारुशील यौवनावस्था को प्राप्तहुवा तो बडादानी और दानीहुआ ॥

तदास्य बुद्धिरुत्पन्ना धनस्योत्पादने मुने ॥
विदर्भदेशजं वस्तु क्रीत्वा स वणिजां पतिः ॥ ४७ ॥
विक्रयार्थंगतः सिन्धून् सार्थेन महतायुतः ॥

तथा रजांसि त्रीण्येव पवित्राणीह भूतले ॥
एकं व्रजरजः पुण्यं चित्रकूटरजस्तथा ॥ ४० ॥
कपिलालयजं तद्वत्पवित्रं सर्वमुक्तिदम् ॥

इह भूतले त्रीण्येवरजांसि तथापवित्राणि एकं व्रजरजः पुण्यं तथा चित्रकूटरजः पवित्रं तद्वत्सर्वमुक्तिदङ्कपिलालयजंरजः पवित्रमस्ति ॥

इस पृथ्वी में तीन ही रज पवित्र हैं एक तो व्रजरज, दूसरा चित्रकूट का रज और तीसरा सब को मुक्ति देनेवाला कपिलालय का रज ॥

तस्मात्पुण्यतरेदेशे पुरे पुण्यकुलेतथा ॥ ४१ ॥
पुण्ये गृहे पुण्यवति जन्मैतस्यप्रदीयताम् ॥

( स्पष्टम् )

इस कारण से पवित्र देश पवित्र ग्राम पवित्र कुल और पवि

इस प्रकार व्यापार के काम में आते जाते अपने पूर्वजन्म के संस्कार से प्रत्येक यात्रा में वह पवित्र कपिल मुनि के आश्रम में ही निवास किया करता था ॥ ५० ॥

तत्र स्नानंचदत्तंच सदानिवसतासता ॥
श्रद्धायुक्तेनमनसा जातं पुण्यमनन्तकं ॥ ५१ ॥

तत्र कपिलायतने सदा निवसता वासं कृतवता सता तेन सद्व्यापारिणा श्रद्धायुक्तेन मनसा शुद्धचेतसा स्नानंकृतं दत्तं दानंचकृतं तेनानन्तकमसंख्याकं पुण्यं जातम् ॥ ५१ ॥

उस कपिलायतन तीर्थ में सदा निवास करताहुआ वह व्यापारी श्रद्धा के साथ स्नान और दान भी किया करता था जिसका अनन्त पुण्य उसको प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥

गच्छतोवागच्छतोवा तीर्थे निवसतः कदा ॥
युक्तस्य भ्रातृभिः पुत्रैर्विप्रैर्वृद्धैस्तथा ॥ ५२ ॥
शीतवातनिमित्तेन रोगोजातः कलेवरे ॥
दिवसे दिवसे तस्य रोगः समधिकोऽभवत् ॥ ५३ ॥

सवैश्यस्तु पूर्वसंस्कारत इहजन्मनिच सदा कपिलायतन निवासाद्यतिसंस्कारवान्विचारवांश्च बभूव ततः परिणतेवयसि व्यापारे स्वपुरोहितपुत्रभ्रातृवर्गैस्तथान्यैर्वृद्धैस्सहव्यापारार्थं परदेश गमनागमने प्रवृत्तोऽभवत् एवं परिवारान्वितस्य तस्यवणिजः गच्छत आगच्छतो वा कदा कस्मिन्नपिकाले कपिलायतने तीर्थे निवसतः निवासंकुर्वतस्तस्य कलेवरे शीतवातनिमित्तेन हेतुना रोगस्संजातः तस्य रोगोदिवसे दिवसे समधिकोऽभवत् ॥ ५२, ५३ ॥

( स्पष्टम् )

तब धनोपार्जन करने की उसकी इच्छा हुई इसलिये विदर्भ देश में जो व्यापारिक वस्तुएँ थीं उन को खरीद पुष्कल धन साथ में ले बेचने के लिये वह सिन्धुदेश में गया ॥

**तद्वस्तु तत्र विक्रीय तज्जं वस्तु गृहीतवान् ॥ ४८ ॥**
**तद्वस्तुनः स्वदेशेषु विक्रयं कृतवान् पुनः ॥**
**एवं गतागतैस्तेन संलब्धं बहुलं धनम् ॥ ४९ ॥**

तद्विदर्भदेशजम्वस्तु तत्र सिन्धुदेशे विक्रीय प्राप्तमूल्येन निजधनेनच तज्जं सिन्धुदेशजं वस्तु गृहीतवान् तत्पुनः स्वदेशेषु आगत्य विक्रीतवान् एवं गतागतै र्व्यापारकर्म्मणा गमनागमनैस्तेन वणिजा बहुलं धनं संलब्धम् ॥ ४८, ४९ ॥

सिन्धदेश में अपने देश की व्यापारिक वस्तुओं को बेंचकर जो धन प्राप्त किया उससे, और अपने साथ में जो धन लेगया था उससे सिन्धुदेश की व्यापारिक वस्तुओं को जिनकी अपने देश में आवश्यकता थी संग्रह किया और उनको अपने देश में आकर बेंचा एवं बारम्बार आने जाने और व्यापार करने से अल्प काल में ही प्रचुर धन का उपार्जन कर लिया ॥ ४८, ४९ ॥

**गच्छतागच्छता तेन पूर्वसँस्कार योगतः ॥**
**कपिलायतने पुण्ये निवासाः सततंकृताः ॥ ५० ॥**

एवं गच्छतागच्छता तेन व्यापारिणा स्वकीय पूर्वसंस्कार योगतः सततं प्रति यात्रायां पुण्ये पवित्रे कपिलायतने कपिल निवासाः मार्गविश्रान्तियः कृताः ॥ ५० ॥

इस प्रकार व्यापार के काम में आते जाते अपने पूर्वजन्म के संस्कार से प्रत्येक यात्रा में वह पवित्र कपिल मुनि के आश्रम में ही निवास किया करता था ॥ ५० ॥

तत्र स्नातंचदत्तंच सदानिवसतासता ॥
श्रद्धायुक्तेनमनसा जातं पुण्यमनन्तकं ॥ ५१ ॥

तत्र कपिलायतने सदा निवसता वासं कृतवता सता तेन सद्व्यापारिणा श्रद्धायुक्तेन मनसा शुद्धचेतसा स्नानंकृतं दत्तं दानंचकृतं तेनानन्तकमसंख्याकं पुण्यं जातम् ॥ ५१ ॥

उस कपिलायतन तीर्थ में सदा निवास करताहुआ वह व्यापारी श्रद्धा के साथ स्नान और दान भी किया करता था जिसका अनन्त पुण्य उसको प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥

गच्छतोवागच्छतोवा तीर्थे निवसतः कदा ॥
युक्तस्य भ्रातृभिः पुत्रैर्विप्रैर्वृद्धैस्तथा ॥ ५२ ॥
शीतवातनिमित्तेन रोगोजातः कलेवरे ॥
दिवसे दिवसे तस्य रोगः समधिकोऽभवत् ॥ ५३ ॥

सवैश्यस्तु पूर्वसंस्कारत इहजन्मनिच सदा कपिलायतन निवासाद्यातिसंस्कारवान्विचारवांश्च बभूवा ततः परिणतेवयसि व्यापारे स्वपुरोहितपुत्रभ्रातृवर्गैस्तथान्यैर्वृद्धैस्सहव्यापारार्थं परदेश गमनागमने प्रवृत्तोऽभवत् एवं परिवारावृतस्य तस्यवणिजः गच्छत आगच्छतो वा कदा कस्मिन्नपिकाले कपिलायतने तीर्थे निवसतः निवासंकुर्वतस्तस्य कलेवरे शीतवातनिमित्तेन हेतुना रोगस्संजातः तस्य रोगोदिवसे दिवसे समधिकोऽभवत् ॥ ५२, ५३ ॥

वह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ वारवार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवास करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होगया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौकर और वस्तुरक्षक तथा क्रय-विक्रय का हिसाब-किताब रखनेवालोंही के साथ अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में आवश्यकीय भृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित स्त्री पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा। एवं सदा आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शर्दी और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया॥ ५२, ५३॥

**ततः संचित्य मनसि विवेकी स वणिक्पतिः॥**
**चक्रे बहूनि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः॥ ५४॥**

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् वणिक्पति ने अपनी भावी दशा को अपने मन में विचार कर अपने साथ के पण्डितों के शास्त्रोक्त उपदेशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में किये॥ ५४॥

**पूर्वं ताम्रतुलां कृत्वा कृत्वा रुप्यतुलां ततः॥**
**ततस्स्वर्णतुलां चक्रे श्रीविष्णुप्रीतये वणिक्॥ ५५॥**

(स्पष्टम्)

पहिले ताम्रमय तुलादान, तदनन्तर चान्दी का तुलादान, और फिर सोने का तुलादान किया। वह वैश्य जितना दान करता था सो कामना-विहीन और श्रीविष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ करता था॥ ५५॥

तथा चान्यानि दानानि श्रद्धाभक्तियुतोमुदा ॥
चक्रेऽसौ वणिजां श्रेष्ठो विद्वद्ब्राह्मणवाक्यतः ॥५६॥

( स्पष्टम् )

एवं उस श्रेष्ठी ने अपने विद्वानों के आदेशानुसार श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर प्रसन्नता के साथ और भी अनेक दानों को किया ॥५६॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि चक्रे साङ्ख्यमुपाश्रितम् ॥
एवं सर्वविधिङ्कृत्वा मनसाध्यानमास्थितः ॥ ५७ ॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि मरणानन्तरं पुत्रभ्रात्रादिविहित दानानि च स्वयं चक्रे एवं सर्वविधिङ्कृत्वा साङ्ख्यमुपाश्रितम् साङ्ख्यवर्णितमानसध्यानं मानसिकदेवार्चनमास्थितः ॥ ५७ ॥

फिर अन्त्येष्टि दान जो मृत्यु के पश्चात् पुत्र भ्रात्रादि विहित दान हैं वह भी कर लिया इस प्रकार सब विधि करने के अनन्तर सांख्यशास्त्रानुकूल मानसध्यान में निमग्न हो एकाग्र चित्त करके बैठ गया ॥ ५७ ॥

तस्यचेत्थस्य योदेवस्तं देवंशरणङ्गतः ॥
एवं प्रवर्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तमः ॥ ५८ ॥
बुद्धिः कापिसमुत्पन्ना नित्यानित्यविवेकिनी ॥
शरण्यस्य प्रसादेन सांख्याचार्यस्य सत्तमा ॥ ५६ ॥

( स्पष्टम् )

हे अगस्त्य ! इस प्रकार ध्यानावस्थित हो उस तीर्थ के देवता श्रीकपिलाचार्य का शरण्य हुआ और सतत ध्यान यत्न करने से जब शुद्ध अन्तःकरण होगया तो श्रीकपिलमुनि की प्रसन्नता से नित्यानित्य विवेचिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो गया ॥ ५८, ५६ ॥

तस्याःप्रादुर्भवाद्वैश्यजीवन्मुक्तोऽभवत्तदा ॥
पश्यतां सर्वबन्धूनां ततः स्वदेहमत्यजत् ॥ ६० ॥

तस्याः ज्ञानवत्या बुद्ध्या प्रादुर्भावादुदयादेव स जीवन्मुक्तोऽभवत् । ब्रह्मसाक्षात्कारेणजीवन्मुक्तोभवतीति सांख्योक्तेः । तदनन्तरमिदंपांचभौतिकमनित्यं शरीरं रक्षतु जहातुवेतिब्रह्मज्ञानिनामिच्छाधीनमस्त्यतः स इदमनित्यं देहं स्वस्त्रीपुत्रभ्रात्रादि सर्वबन्धूनां पश्यतामेवात्यजदर्थात्परलोकं जगाम ॥ ६० ॥

उस ज्ञानबुद्धि के उत्पन्न होतेही वह वैश्य जीवनमुक्त हो गया। क्योंकि ब्रह्म साक्षात्कार जिसको हो जाता है वह जीवन्मुक्त कहाही जाता है, यह सांख्य का मत है। अब रहा मरना जीना सो ब्रह्मज्ञानियों की इच्छा पर है वह चाहे इस अनित्य पांचभौतिक शरीर को रक्खे या परित्याग कर दे, उत्तम ज्ञानी बहुधा त्यागही करते हैं इसलिए अपने बन्धु बान्धव स्त्री पुत्रादि के देखते देखते उसने अपने इस अनित्य शरीर को त्याग दिया ॥ ६० ॥

लोकं वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोमलाः ॥६१॥

शरीरत्यागान्तरं तमसोन्धकारस्य परम् पारं भास्वरं देदीप्यमानं लक्ष्मीपतेर्निवासस्थानम्वैकुण्ठलोकमगमत् यद्गत्वा शान्ताः रागद्वेषादिरहिताः अमलाः शुद्धाः सन्यासिनो विरक्ताः न निवर्तन्ते जननमरणाभ्यां रहिता भवन्ति ॥ ६१ ॥

इस स्थूल शरीर को त्याग करने के अनन्तर सूक्ष्म शरीर को धारण कर इस सांसारिक मोहान्धकार से अलग हो कोटि सूर्य के समान चमकता हुआ श्रीलक्ष्मीपति के निवासस्थान ( वैकुंठधाम ) को चला गया। जहां जाकर शान्त और विशुद्ध सन्यासी जन फिर नहीं आते ॥ ६१

एवं तदासौ पापात्मा तत्तीर्थस्य प्रसादतः ॥
प्राप दुःप्राप्यमन्यैर्यत्तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ६२ ॥

एवं तदा तस्मिन्समये तत्तीर्थस्य प्रसादतो महत्वतोऽसौ पापात्मा अन्यैर्योगिभिस्तपास्विभिर्दुःप्राप्यं दुर्लभंयद्विष्णोः परमं पदन्तत्प्राप ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस तीर्थ के प्रसाद से उस पापात्मा ने, योगी और तपस्वि को अलभ्य जो विष्णुभगवान् का परम धाम है उसको पाया ॥ ६२

स सखा चारुशीलोऽभूत्पुण्यशीलसुशीलयोः ॥
रमतेद्यापि वैकुंठे लोके दिव्यप्रभामये ॥ ६३ ॥

अस्मिंश्लोके वैकुण्ठलोके तस्य समवस्थानम्वर्णयति। स चारुशीलः पुण्यशीलसुशीलयोः विष्णुपार्षदयोः सखा मित्रमभूयो ऽद्यापि दिव्यप्रभामये वैकुंठे रमते ॥ ६३ ॥

वह वैकुंठधाम में जाकर भगवान के पार्षद पुण्यशील और सुशील का मित्र होगया जो आजतक बैकुंठ में विहार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

इत्थंभूतानुभावोयं दृष्टोदिव्यप्रभाववान् ॥
यस्य माहात्म्यकथने शक्तोनाहं न मे पिता ॥ ६४ ॥

इत्थंभूतानुभावः इत्थंभूतप्रभावः। अनुभावः प्रभावेचेत्यमरः। दिव्यप्रभाववान् दिव्यप्रतापवान् अयं तीर्थराजोदृष्टः दृष्टिविषयं गतः। यस्य माहात्म्य कथने नाहं शक्तोनमेपिता शक्तः ॥ ६४ ॥

( अत्रस्कन्दस्तीर्थमाहात्म्यस्यपरां कथांजनयति )

(१) पुण्यशील और सुशील विष्णु भगवान् के दोनों पार्षद थे जो निरन्तर भगवान् की सेवा में रहते थे।

इस तरह के प्रभाव वाला स्वर्गीय प्रताप से युक्त यही तीर्थराज देखागया है जिसका माहात्म्य वर्णन करने में न मैं समर्थ हूं न मेरे पिता शिवजी समर्थ हैं ॥ ६४ ॥

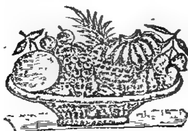
इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाच्छ्रा वयेच्चयः ॥
स्वस्वदेहांतमासाद्य वैकुंठे यास्यति ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

( अथमध्यायोपसंहारश्च )

इमं पुण्यं पवित्रमितिहासं यःशृणुयात् यश्चश्रावयेत् । स स्वस्वदेहान्तमासाद्यार्थात् पूर्णायुः पर्य्यन्तंभोगंभुक्त्वान्ते ध्रुवं वैकुंठ यास्यति गमिष्यति । वारम्वारं श्रवणाच्छ्रावणाच्चप्राप्तश्रद्धया तत्तीर्थसेवनेन मुक्तिर्भविष्यतीति तात्पर्य्यम् ॥ ६५ ॥

इस पवित्र इतिहास को जो सुनेगा और सुनावेगा वे दोनों पूर्ण आयु पर्य्यन्त सांसारिक भोगों को भोगकर देहान्त होने पर वैकुंठधाम को जायंगे । इसका भाव यह है कि वारवार इस इतिहास को सुनने सुनाने से तीर्थ में श्रद्धा होगी पीछे तीर्थस्नान तीर्थवासादि के द्वारा मुक्ति होगी ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये वैद्यमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ।



# अथाष्टमाध्यायकथारम्भः ।

( सूत उवाच )

इत्युक्त्वा पुनरप्याह श्रद्धाभक्तियुतं मुनिम् ॥
तत्तीर्थमहिमोपेतं भगवानग्निभूर्वचः ॥ १ ॥

सूतः स्वशिष्यान् कथयति यदित्युक्त्वार्थात्सप्तमाध्यायकथां कथित्वा पुनरप्यग्निभूर्भगवान्स्कन्दः श्रद्धाभक्तियुतं मुनिमगस्त्यं तत्तीर्थमहिमोपेतंवच आह ॥ १ ॥

सूतजी अपने शिष्यों से बोले कि स्कन्द भगवान् ने इस प्रकार सप्तमाध्याय की कथा सुनाने के पश्चात् श्रद्धा भक्ति से संयुक्त अगस्त्य मुनि से फिर भी उस तीर्थ की महिमा से संयुक्त वचन कहना आरंभ किया ॥ १ ॥

( स्कन्दोवाच )

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तीर्थस्यास्य महाद्भुतम् ॥
महिमानं मुनीशान ! सावधानतया शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दोऽगस्त्यं कथयति यत् हे मुनीशान ! अगस्त्य ! पुनरन्यन्महाद्भुतं महाश्चर्य्यकरमस्य तीर्थस्य महिमानं वक्ष्यामि कथयामि तत्सावधानतया सावधानेन मनसा शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दजी ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर उसी तीर्थ की महाश्चर्य्यकारिणी दूसरी महिमा कहता हूं, सावधान होकर ... ॥ २ ॥

महाकुलीनोविप्रोऽभून्मद्रदेशेषु कश्चन ॥
धर्म्मात्मा कृषिकर्ताच दयावान्दीनवत्सलः ॥ ३ ॥
सुशीलः साधुसंसर्गी दानशीलः क्षमान्वितः ॥
महाधनी शुद्धभोगो भाग्यवांश्च जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥
मानदोमानहीनेभ्यो दिनेभ्योन्नप्रदायकः ॥
विष्णु माहात्म्यसुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ५ ॥

धर्म्मात्मा कृषिकर्त्ता दयावान् दीनवत्सलः सुशीलः साधुसंसर्गी दानशीलः क्षमावान् महाधनी शुद्धभोगी। धनवतां व्यसनबाहुल्याच्छुद्धभोगाभावोऽत्र उक्तम् शुद्धभोगः। विद्यमानोपकरणेष्वपि सात्विकभोगकर्त्ता। भाग्यवान् जितेन्द्रियोमानहीनेभ्योमानदोमानदाता दीनेभ्योदरिद्रेभ्योऽन्नप्रदायकोऽन्नदाता विष्णोर्माहात्म्यस्य सुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणोमहाकुलीनः कश्चन विप्रोमद्रदेशेष्वभूदभवत् ॥ ३, ४, ५ ॥

मद्रदेश में महाकुलीन धर्मात्मा, खेती का काम करनेवाला, दयावान्, दीनों का प्रतिपालक, सुशील, साधुओं की संगति करनेवाला, दानशील, क्षमाशील, महाधनी, सात्विक भोग करनेवाला, भाग्यवान्, जितेन्द्रिय, मानहीनों को मान देनेवाला, दरिद्रियों को धन देनेवाला, विष्णुमाहात्म्य का श्रोता, विष्णु भगवान् की भक्ति में परायण एक ब्राह्मण रहता था ॥ ३, ४, ५ ॥

इदृग्गुणविशिष्टस्य ब्राह्मणस्य तपोधन ॥
धर्मपत्न्यां तदातस्य सूनवोवहवोऽभवन् ॥ ६ ॥

हे तपोधन ! इदृग्गुणविशिष्टस्य तस्य ब्राह्मणस्य धर्मप
वहवः सूनवोऽभवन् बभूवुः ॥ ६ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार के उत्तम गुणों से सम्पन्न उस ब्राह्मण के उसकी धर्म्म पत्नी से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए॥ ६॥

तेपि धर्मपराः सर्वे पितृधर्म्मपरायणाः॥
महात्मानोधर्मलब्धा बभूवुर्धनवर्धिनः॥ ७॥

ते सर्वे पुत्रा अपि धर्मपराः धर्मनिष्ठाः पितृधर्मपरायणा महात्मानोधर्मलब्धाधर्मोपार्जनाःधनवर्द्धिनोधनवृद्धिकर्तारश्च बभूवुः॥ ७॥

उसके वे पुत्र भी पिता के सदृश धर्मिष्ठ माहात्मा तथा धर्मपूर्वक धन लाभ करने और धन को बढ़ानेवाले हुए॥ ७॥

जातेषु तेषु पुत्रेषु गृहभारवहेषुच॥
यात्रार्थं सर्वतीर्थानांताननुज्ञाप्यनिर्ययौ॥ ८॥

स ब्राह्मणोगृहभारवहेषु तेषु पुत्रेषु जातेषु तान् पुत्राननुज्ञाप्य गृहभारं समर्प्य सर्व तीर्थानां यात्रार्थं निर्ययौ गतवान्॥८॥

जब उसके सभी पुत्र गृह का भार संभालने योग्य हो गये तो उनको गृह कार्य्य में नियुक्त कर वह ब्राह्मण तीर्थों की यात्रा करने को चला गया॥ ८॥

तदातीर्थप्रसंगेन चक्रे पृथ्वीप्रदक्षिणम्॥
तेषु तेषुच तीर्थेषु सस्नौ स प्रमुदान्वितः॥ ९॥

तदा तदनन्तरं तीर्थप्रसंगेन तीर्थव्याजेन स विप्रः पृथ्वी प्रदक्षिणं चक्रे कृतवान्। येषु येषु तीर्थेषु गतस्तेषुतेषुच प्रमुदान्वितो हर्षेण संयुक्तः सस्नौ स्नानं कृतवान्॥ ९॥

तिसके बाद उसी तीर्थयात्रा के प्रसंग में पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। वह जिन तीर्थों में गया उन २ तीर्थों में बड़े हर्ष के साथ स्नान किया॥९

तीर्थस्नानजपुण्येन समभूद्गतकल्मषः ॥
तथोक्तंहि महाभाग शास्त्रेषु बहु विस्तरम् ॥ १० ॥

तीर्थस्नानजपुण्येन स गतकल्मषोगतपापस्समभूत् हे महाभाग ! तथाहि शास्त्रेषु बहुविस्तरं तीर्थफलक्रम् ॥ १० ॥

हे महाभाग ! तीर्थ स्नान के पुण्य से उस ब्राह्मण के सब प्रत्यवाय दूर होगये शास्त्रों में विस्तार के साथ वैसाही कहा भी है ॥ १० ॥

दानाद्भोगानवाप्नोति तीर्थस्नानादघक्षयः ॥
परोपकरणात्स्वर्गं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

दानात् दानकरणाद्भोगानवाप्नोति तीर्थस्नानादघक्षयो पापनाशोभवति परोपकरणात् परोपकारेण स्वर्गं स्वर्गप्राप्तिः ज्ञानाद्ब्रह्मज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयादिति ॥ ११ ॥

दान करने से भोग की प्राप्ति होती है तीर्थ स्नान से पापों का नाश होता है परोपकार से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से मोक्ष होता है ॥ ११ ॥

एवं भ्रमन् स तीर्थानि क्रमेणागतवान् पुनः ॥
समुद्रे वालुकापूर्णे विमलं कापिलंसरः ॥ १२ ॥

एवं स ब्राह्मणस्तीर्थानि भ्रमन् क्रमेण प्रदक्षिणक्रमेण पुनर्वालुकापूर्णे देशे विमलं कापिलंसरःप्रति आगतवान् ॥ १२ ॥

इस प्रकार क्रममार्ग से तीर्थों का भ्रमण करता हुआ वह ब्राह्मण वालुकापूर्ण समुद्र प्रदेश में निर्मल कपिलसरोवर पर आया ॥ १२ ॥

मानवीं योनिमासाद्य सद्यः शुद्धिसमन्विताः ॥
पिपीय पदायोनिस्युर्यत्रयः पयसासमम् ॥ १३ ॥

यत्पयः यस्य सरसः पयसादुग्धेनसमम् तुल्यं पयोजलं पशवोपिनिपीय पीत्वा मानवीयोनिमागाद्य सद्यस्तत्कालं शुद्धि समन्विता भवन्तीति शेषः ॥ १३ ॥

जिस कपिलसर का दूध के समान जल पीकर पशु भी तत्काल मनुष्य-योनि पाकर शुद्ध होजाते हैं ॥ १३ ॥

तत्सरःसमनुप्राप्य सविश्रान्तमना ह्यभूत् ॥
तत्रैव क्षेत्रप्रवरे क्षेत्रसंन्यासमाश्रितः ॥ १४ ॥

तत्सरस्समनुप्राप्य तत्कपिलसरोवरमागत्यतीर्थयात्रयापरि-श्रान्त स ब्राह्मणोविश्रान्तमना ह्यभूत् । तत्रैव क्षेत्रप्रवरे स क्षेत्र सन्यासमाश्रितः क्षेत्रसंन्यासं धृतवान् ॥ १४ ॥

उस कपिलसर पर आकर समस्त तीर्थों के परिभ्रमण से परिश्रान्त उस ब्राह्मण ने विश्राम करने की इच्छा की और उसी उत्तम क्षेत्र में क्षेत्र-सन्यास लेलिया ॥ १४ ॥

यावज्जीवमिदंक्षेत्रं नत्यक्ष्यामि कदाचन ॥
इतियोनिश्चयश्चित्ते सक्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

यावज्जीवं जीवनपर्यन्तमिदंक्षेत्रं कदाचन नत्यक्ष्यामि न त्यक्ष्यामीति यश्चित्ते निश्चयस्स क्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

जबतक जीवन रहेगा तबतक इस क्षेत्र को कभी त्याग नहीं करूंगा इस मानसिक निश्चय को क्षेत्र-सन्यास कहा जाता है ॥ १५ ॥

तथा स मद्देशोयोपिमस्तीर्थशिरोमणौ ॥
सर्वार्थदीपनं धर्मं सारदं सरस्तावधि ॥ १६ ॥

तथा तदनन्तरं स मद्रदेशीयोविप्रोब्राह्मणस्तीर्थशिरोमणौ तीर्थराजे तत्तीर्थदेवतं कपिलमुनिं मरणावधि मरणपर्य्यन्तं शरणं चक्रे कृतवान् ॥ १६ ॥

उसके अनन्तर वह मद्रदेशी ब्राह्मण उस तीर्थ शिरोमणि कपिल क्षेत्र में मरणावधि तीर्थ देव कपिल भगवान् का शरण्य हो गया ॥ १६ ॥

एवं निवसतस्तस्य तस्मिंस्तीर्थे सरोवरे ॥
व्यतीयुः शरदः पंच स्नातस्त्रिषवणं सदा ॥ १७ ॥

एवं तस्मिन्तीर्थसरोवरे निवसतोनिवासंकुर्वतस्त्रिषवणं स्नात स्तस्य विप्रस्य पंचशरदः पंचवर्षाणि व्यतीयुः ॥ १७ ॥

एवं कापिलतीर्थ में निवास करते और त्रिकाल स्नान करते उस ब्राह्मण को ५ वर्ष बीतगये ॥ १७ ॥

सम्प्राप्ते पंचमे वर्षे शुद्धभावेन सत्तम ॥
तुष्टाव तं तीर्थवरं सांख्यबुद्धिप्रवर्तकम् ॥ १८ ॥

पंचमे वर्षे सम्प्राप्ते सांख्यबुद्धिप्रवर्तकं सांख्यबुद्धिप्रदातारं तं तीर्थवरं शुद्धभावेन तुष्टाव स्तुतिश्चकार ॥ १८ ॥

पांचवां वर्ष जब प्राप्त हुआ तो शुद्ध भाव से उस ब्राह्मण ने सांख्यबुद्धि के प्रवर्तक उस तीर्थवर की स्तुति की ॥ १८ ॥

* तीर्थराजस्तुतिः *

संकीर्णी करणं पापं नाना वरणकारणं ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥
अजातियं तथा पापं जाताजातद्वयं करम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥

मलिनीकरणं पापं महामलफलप्रदम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २१ ॥
जाति भ्रंशकरं पापं कुर्नंदुर्योनिदंभवे ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २२ ॥
उपपातक संज्ञंयत् कूटशाल्मलिदायकम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २३ ॥
अतिपापफलंपूयकुंडेऽधोमुखपातनं ॥
यदिस्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २४ ॥
महापापं महापीडकुंभीपाकफलप्रदम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २५ ॥
यानिकानिच पापानि भवन्तु भुवनत्रये ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २६ ॥
सर्वाण्यघानि नश्यन्ति तीर्थराट् ते प्रसादतः ॥
इति संचिन्त्य मनसा त्वामहं शरणं गतः ॥ २७ ॥

नोट—यद्यपि तीर्थराज स्तुति का अर्थ नहीं लिखा गया है तथापि स्तुति में बहुत से पापों के नाम लिये गए हैं उनके लक्षण लिखना अवश्य है अतः उनका विवरण और उनसे अतिरिक्त पापों की नामावली तीन वर्ग में विभक्त करके लिखता हूं क्योंकि स्तुति में जितने पाप परिगणित है उनसे अतिरिक्त पापों की भी गणना पृथक् रूप में उनके उनके नामों से नहीं लेकर एकत्रही स्तुति के अन्त में " यानि कानि च पापानि " इस श्लोक में अशेष विशेष कुल पापों को लेही लिया गया है अतः नीचे की नामावली महापातक, पातक, उपपातक इन तीन भेदों से है
'उपपातकों के भी दो भेद हैं जिन्हें किन्हीं ने उपपा०

इति संस्तुवत स्तस्य विप्रस्य कलशोद्भव ॥
हृदि कोपि प्रकाशोऽभूद् ज्ञान ध्वांतनाशन ॥ २८ ॥

हे कलशोद्भव ! इति एवं संस्तुवत स्तुतिं कुर्वतस्तस्य विप्रस्य हृदि हृदये अज्ञान ध्वांतनाशनः कोपिप्रकाशोऽभूत् । तीर्थराज प्रसादत्त हृदयान्धक रोनष्ट ॥ २८ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार स्तुति करता हुआ उस ब्राह्मण का हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करनेवाला एक प्रकाश उत्पन्न हुवा ॥२८

*संभव है और कितनों से बचना गृहस्थाश्रम महाअसम्भव है जिनका बोध नामावली देखने से स्वतः पाठक और श्रोताओं को होजायगा अतः उनको पृथक् नहीं किया है ।

महापातकनामानि सोपपातकानि ।

महापातक तो पांच ही हैं १ ब्रह्महत्या २ मद्यपान ३ सुवर्ण की चोरी ४ गुरुपत्नीगमन ५ इनके संसर्गी । और जितने १ छूत अछूत का अविचार २ संकरी करण ३ मलिनी करण ४ अपात्री करण ५ जातिभ्रंशकरण ६ अविहित कार्य का करना ७ कर्म का लोप करना ८ रसवेचना ९ कन्याविक्रय करना १० अश्व विक्रय ११ गोविक्रय १२ खर विक्रय १३ उष्ट्र विक्रय १४ दासी विक्रय १५ बकरे आदि पशुओं का विक्रय १६ अपना घर बेंचना १७ नीली विक्रय १८ जिस वस्तु को खरीदने की सामर्थ नहीं उसको बेंचना १९ सौदा किसी तरह का बेंचना २० जल में रहने वाले जानवर का विक्रय २१ स्थल जन्तु का विक्रय २२ आकाश में रहनेवाले जन्तु का विक्रय २३ व्यर्थ वृक्ष का काटना २४ ऋण का न देना २५ ब्रह्मस्व का हरण करना २६ देवस्व का हरण करना २७ राजस्व का हरण करना २८ परद्रव्य का अपहरण करना २९ तेल, घी आदि वस्तुओं का अपहरण करना ३० फल चुराना ३१ लोहा आदि धा—

तदायं सुतपाविप्रस्तुरीयज्ञानभूमिनः ॥
दृश्यमानं जगज्जालं ददर्श हृदि चित्रवत् ॥ २६ ॥

तदा तस्मिन्काले यदा विप्रस्य हृदि प्रकाशोजातस्तदायं सुतपा विप्रोज्ञानस्तुरीयां ज्ञानभूमिङ्गतः ज्ञानस्यसप्त भूमयो-भवन्ति तत्तद्वर्णनंपातञ्जलियोगसूत्रे। तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः

---

1 असद्हरण करना ३२ अवस्तु का हरण करना ३३ ब्राह्मणनिन्दा ३४ गुरुनिन्दा ३५ वेदनिन्दा ३६ शास्त्रनिन्दा ३७ परनिन्दा ३८ अभक्ष्यभक्षण ३९ अभोज्यभोजन ४० अचोष्यचोषण ४१ अलेह्यलेहन ४२ अपेयपान ४३ अछूत को छूना ४४ जो बात सुनने के योग्य नहीं वह सुनना ४५ जो हिंसा के योग्य नहीं उसको हिंसन करना ४६ जिसकी स्तुति नहीं करना चाहिये उसकी स्तुति करना ४७ जो अचिन्त्य है उसकी चिन्ता करना " यहांपर अचिन्त्य शब्द का अर्थ परब्रह्म (जो शास्त्रों में लिखा है वह) समझकर ईश्वर चिन्तन पाप है ऐसा न समझ लेना चाहिये नहीं तो अर्थ का अनर्थ होजायगा शास्त्रों में ' अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने समस्तजगदाधारमूर्त ये ब्रह्मणे नमः ' इस वाक्य में ब्रह्म को अचिन्त्य अव्यक्त निर्गुण गुणात्मा और समस्तजगत् का आधार मानकर प्रणाम किया गया है इसलिये अचिन्त्य शब्द से जिस बात के स्मरण करने से चित्त में प्रसन्नता हो वह ईश्वर बोधक अचिन्त्य शब्द को छोड़ बाकी जगह में जहां कि किसी बातको स्मरण करने से चित्त में ग्लानि पैदा होती हो उस अचिन्त्य का चिन्तन पाप समझना " ४८ अयाज्य जो यज्ञ करने का अधिकारी नहीं उससे यज्ञ कराना या जो यज्ञ नहीं करना चाहिये वह यज्ञ करना ४९ अपूज्य का पूजन करना ५० माता पिता का तिरस्कार करना ५१ स्त्री पुरुष के परस्पर की प्रीति को छुड़ाना भेद लगादेना ‡

प्रज्ञा ॥ तस्य विवेकख्यातिरूपस्य हानोपायस्यप्रान्तभूमि
रूपीणी प्रज्ञा योगजसाक्षात्काररूपिणी सप्तप्रकारा । तद्य
हेयन्दुःखम्मया परिज्ञातमतोनमेत्रकिमपिज्ञातव्यमित्येकाप्रज्ञा
तथा विवेकख्यातिरूपोहानोपायोमयानिष्पादितोनास्य निष्पा
दनमत्रशिष्यते तत्फलानुभवादिति द्वितीया । तथा हे

‡ ५२ परस्त्री गमन ५३ वेश्या गमन ५४ दासी गमन ५५ चाण्डालादि
गमन ५६ अयोनि गमन ५७ रजस्वला गमन ५८ पश्वादि गमन
५९ कूट साक्षी ( झूठी गवाही ) ६० पैशून्यवाद ( चुगली करना )
६१ झूठ बोलना ६२ म्लेच्छ संभाषण ६३ ब्रह्म द्वेष ६४ ब्रह्मवृत्ति हरण
६५ वृत्ति छेदन वृत्तिच्छेदोहितद्वधः ( वृत्ति का छुडाना उसको वध
करने के बराबर होता है ) ६६ परवृत्ति को ले लेना ६७ मित्र को
ना ६८ गुरु को ठगना ६९ स्वामी को ठगना ७० गर्भपात करना
रास्ते चलते ताम्बूल चाबना ७२ हीन जाति की सेवा करना
परान्न भोजन करना ७४ लहुन, कान्दा, गाजर और तालफल
दे फलों का भक्षण करना ७५ झूठा खाना ७६ मार्जारोच्छिष्ट
। ७७ बासी अन्न खाना ७८ पंक्ति भेद करना ७९ भ्रूण हिंसा
पशु हिंसा ८१ बाल हिंसा ८२ और किसी भी प्रकार की हिंसा
अपवित्र रहना ८४ स्नान नहीं करना ८५ सन्ध्या को त्याग
। ८६ अग्निहोत्र छोडदेना ८७ बलि वैश्वदेव को त्याग करदेना
निषिद्ध आचरण करना ८९ कुग्राम में वास करना ९० ब्रह्मद्रोह
गुरु द्रोह ९२ पितृ मातृ द्रोह ९३ पर द्रोह ९४ आत्मस्तुति
दुष्टजन संसर्ग ९६ गौ की सवारी ९७ वृषभ की सवारी
भैंसे की सवारी ९९ गधे की सवारी १०० ऊंट की
१ बकरे की सवारी १०२ भृत्याभरण १०३ मरने मा
ाग करना १०४ गोत्र त्याग करना १०५ कुल का त्याग क

हेतवोऽविद्याकामकर्मादयोममाशेषतः क्षीणाः। नतेषांचेतव्यमव-शिष्यते इति तृतीया। तथा दुःख हानरूपमोक्षाख्यफलं तद्बोधराऽ-सम्प्रज्ञातयोगेन साक्षात्कृतं न पुरुषार्थस्यापिज्ञातव्यमवशिष्यत-इति चतुर्थी प्रज्ञा। तदेस्वस्यकृत्यसमाप्त्यनुभवरूपप्रज्ञाचतुष्टयम्।

---

§ १०६ दूर से मलाहदेना १०७ ब्राह्मणों की आशा भेदन करन १०८ अपूज्य का आशीर्वाद लेना और १०९ पतित से बात चीत करना इत्यादि उपपातक हैं। इन में व्यर्थ के मनोरथ बान्धना भी शामिल है। इन सब उपपातकों के नाश के विषय में कपिलसरोवर की स्तुति उस ब्राह्मण देव ने की है। मनुना जातिभ्रंशकरसंकरीकरणापात्री करण-मलिनीकरणसंज्ञानि पातकानि परिगणितानि यथा ब्राह्मणस्य रूजः कृत्या *घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः। जैह्म्यं पुंसिच मैथुन्यं जाति भ्रंशकरं स्मृतम्। खराश्वो-ष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा॥ संकरीकरणंज्ञेयंमीनाहिमहिषस्यच॥* निन्दितेभ्योधनादानं वाणिज्यंशूद्रसेवनम्। अपात्रीकरणंज्ञेयमसत्यस्य-चभाषणम्॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्। फलैधः कुसुम-स्तेयमधैर्यंच मलावहम् इति॥ महापातकंपुच स्वर्णस्तेयी, ब्राह्मण सुवर्णस्तेयी, महापातकी भवति। सुरापान जो महापातक कहा गया है वहां विचार है सुरा के ११ भेद हैं उनमें मुख्य गौडी माध्वी और पैष्ठी ३ हैं इस में प्रथम पक्ष तो यह है कि निषिद्धसुरा का पान नहीं करना तदनन्तर गौणी माध्वी और पैष्ठी में पैष्ठी का पान महापातक है। अन्त में धर्मशास्त्रकारों का वचन है कि ब्राह्मण किसी तरह के मद्य या सुरा का पान न करे और क्षत्रिय वैश्य यदि करे तो महापातकी नहीं। इस प्रकार यहां साधारण विचार दिखाया है विशेष धर्मशास्त्रों में वर्णित है। पांचवां जो संसर्गी है वह यदि महापातकियों का लगातार वर्ष भर संसर्ग करे तो पातकी होता है वह भी ज्ञानावस्था में। शेष जो उपपातकादि लघुपातकादि हैं उनका नाश सदशही साधारण प्रायश्चित है कितने सन्ध्यावन्दन और गायत्री जप से ही नष्ट होते हैं कितने श्रावणयादि कर्मों द्वारा निवृत्त हो जाते हैं॥

भाविविदेहकैवल्यकालीनावस्थानुभवरूपश्चान्यदवस्थात्रयं स्वयमेधाग्रे वक्ष्यतीतिसप्त ज्ञानभूमयस्तत्र विप्रस्य कपिलमुनि प्रसादाज्जातं हृत्प्रकाशे यदनेकासनबन्धप्राणायामप्रत्याहारादिनाभूमयस्सिद्ध्यन्ति तासु भूमित्रयं जातप्रकाशमात्रयैवासिद्धज्ञातम् लब्धप्रकाशं स तुरीयज्ञानभूमितो दृश्यमानंजगज्जातमर्थात्सर्वं जगद्धृदि चित्रवत्पश्यति ॥ २६ ॥

जब उस ब्राह्मण को कपिलमुनि की प्रसन्नता से एकाएक हृदय में प्रकाश उत्पन्न होने से तुरीयावस्था आगई तो वह तुरीया ज्ञान भूमि में आकर समस्त जगत को अपने हृदय में ही देखने लगा था पातंजलि योग सूत्र में ज्ञान की सात भूमि वर्णन की गई हैं जो यम नियम के साथ क्रम से आसन बंध प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि द्वारा घोर परिश्रम करने पर योगियों को क्रम से प्राप्त होती हैं जिनमें प्रथम भूमि यह है कि मैं ने दुःख को जान लिया अब इसके विषय में कुछ नहीं जानना है उसको त्याग करना चाहिये। और मिथ्या ज्ञान वासना से रहित अन्तरात्मा को विवेकख्याति कहते हैं या हानोपाय कहते हैं इसलिये मिथ्या वासना से रहित अन्तरात्मा को कर लिया अब इसमें कुछ शेष नहीं है ऐसी स्थिति को दूसरी ज्ञान भूमि कहते हैं। तथा त्याग करने के योग्य जो अविद्या काम कर्म आदि इनके विशेष नाश होने को ज्ञान की तीसरी भूमि कहते हैं। और योगियों का पुरुष-साक्षात्कार-रूप मोक्षप्राप्ति पुरुषार्थ है इस पुरुषा का ज्ञान कर लिया अब इसके ज्ञान में कुछ शेष नहीं है इसको ज्ञा की चौथी भूमि कहते हैं। इस तरह महापरिश्रम-साध्य और योगियों से भी दुःप्राप्य चार भूमिका को जीतकर चतुर्थ भूमि से यह ब्राह्मण बाह्य दृश्य पदार्थ को अपने हृदयपट खोलकर चित्रवत् देखने लगा। अब इन की तीन भूमिकाओं का वर्णन आगे के श्लोकों में करते हैं॥ २८ ॥

सुप्तिवत्स्वप्नवच्चैव कालेन कियता पुनः ॥
दृश्यादृश्यमभूदेतत्पंचमीभूमिकाश्रितेः ॥ ३० ॥

एवं चतुर्थ्यां भूम्यां सर्वजगज्जातं हृदिभावयन् कियता कालेनैवं कुर्वन् पंचमीभूमिमाश्रितः पातंजलियोगसूत्रे पंचमीलक्षणमुक्तं यथा समाप्त भोगाप वर्गामे बुद्धिर्भविष्यतीत्येवमाकारा पञ्चमीभूमिः यद्गत्वा भोगापवर्गाभ्यामपि योगी निवृत्तो भवति। तत्रगतस्य विप्रस्यैतद्दृश्यादृश्यं सर्वं सुप्तिवत्स्वप्नवच्चैवाभूत्। स्वप्नवदयंसंसारोजातः। सर्वमिथ्या मयमभूत् ॥ ३० ॥

इस तरह जब चतुर्थी भूमि में आकर उस ब्राह्मण को सम्पूर्ण जगत् हृदय में ही दीखते कुछ दिन बीत गये तो अब पांचवीं ज्ञान भूमि में प्रवेश किया जहां समस्त संसार के बाह्य दृश्य और अदृश्य पदार्थ स्वप्न के ऐसे मालूम देने लगे और मन केवल परब्रह्म में लीन होने लगा ॥ ३० ॥

पुनः षष्ठीमितः प्राज्ञः स्वतोऽदृश्यं न पश्यति ॥
परैरुत्थापितः क्वापि स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते ॥ ३१ ॥

प्राज्ञः ज्ञानवान् स ब्राह्मणः पुनरितोपीतपंचमीभूमिकातः षष्ठींगतः अस्यालक्षणं पातञ्जलियोगसूत्रे। यथा बुद्धिरूपेण परिणताः सत्वादयोगुणाः स्वकारणे लयमेष्यन्तीत्येवमाकारा षष्ठी ज्ञानभूमिः। एवं सत्वादिष्वपिलयंगतेषु उन्मनीभावंप्राप्तः। स्वतः स्वदृष्टितोऽदृश्यं किमपिन पश्यति सुषुप्ति भावंप्राप्तइव क्वापि कस्मिँश्चित्कालेपि परैरन्यजनैरुत्थापित उद्बोधितः स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते पश्यति उक्तञ्च योगसारे समाधि प्रकरणे। प्रनष्टः श्वासनिश्वासः प्रध्वस्तविषयग्रहः निश्चेष्टोनिर्विकार-

श्चलयोजयति योगिनाम् ॥ उच्छिन्नसर्वसंकल्पोनिः शेषाशेषचेष्टितः ॥ स्वावगम्योलयः कश्चिज्जायते वागगोचरः ॥ ३१ ॥

यह ब्राह्मण पंचमीभूमिका में कुछ दिन रह कर तब ज्ञान की छठी भूमि में आया और इस भूमि में अपनी आंखों से कुछ नहीं देखता था और सोए हुए मनुष्य के ऐसा दीखने लगा तथा जब दूसरे आकर जगाते थे तो दृश्यवस्तु को स्वप्नवत् देखता था। पांतजलि योग सूत्र में षष्ठी भूमिका का लक्षण यह कहा गया है कि जिस अवस्था में अविद्या रूप से परिणत सत्वादि गुण अपने २ कारण में लय हो जाते हैं उसको छठी भूमि कहते हैं। इस भूमि में योगी पूर्ण समाधि का अधिकारी हो जाता है और परब्रह्म में लीन होने लगता है जिसका लक्षण हठ योग में ऐसा लिखा है कि श्वास और प्रश्वास दोनों नष्ट हो जाते हैं अर्थात् इडा पिंगला दोनों नाड़ियां बन्द होजाती हैं और इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है साधक निश्चेष्ट अर्थात् निर्जीव सा और निर्विकार हो जाता है उस समय प्राण नाभी से कंठ तक सुषुम्णा की गति से चलता रहता है इसको लयावस्था कहते हैं इसमें सभी संकल्प विकल्प उच्छिन्न हो जाते हैं और एकाएक मूर्च्छा तो नहीं हो जाती परन्तु करचरणादि का व्यापार बन्द हो जाता है शरीर पर यदि कोई कीटादि चढ़ जाय या मच्छर और मक्खियां भी काट खायं तो इसका कुछ ज्ञान नहीं होता परन्तु अन्तरगत सचेष्ट प्राण भ्रमण करता रहता है इसको असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं इसका जाननेवाला वही पुरुष होता है जो उस अवस्था को पंहुचा है दूसरा नहीं जान सकता। जिसको दृष्टि देख नहीं सकती वाणी वर्णन नहीं कर सकती ऐसी विलक्षण लय योगिजनों को ही उत्पन्न होती है ॥ ३१ ॥

सप्तमीं भूमिकां प्राप्तः पुनः पूर्णतपोबलात् ॥
चिदानन्दजलेलीनोऽदृश्यन्नापश्यदेकदृक् ॥ ३२ ॥

पुनः पूर्णतपोबलात् सप्तमीन्भूमिकाम्प्राप्तस्स विप्रश्चिदानन्दजले परब्रह्मैकरसेनिमग्न आत्मपरमात्मनोरेकी भावङ्गतः। तदैकदृग्भूत्वा पश्यन्नपिनापश्यत् ॥ इयं पूर्णे समाधिः। अत्र पूर्णोलयावस्थाभवति तल्लक्षणम्। यत्र दृष्टिर्लयस्तत्र भूतेन्द्रिय सनातनी ॥ साशक्तिर्जीवभूतानां द्वे अलक्ष्ये लयंगते ॥ समाधिस्तुयथा। सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतस्तथात्ममन सोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ यदा संक्षीयते प्राणोमानसंच प्रलीयते ॥ तदा समरसत्वंच समाधिरभिधीयते ॥ तत्समंच द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः। प्रनष्टः सर्वसंकल्पः समाधिः सो भिधीयते। राजयोगस्य माहात्म्यं कोवा जानाति तत्वतः ॥ ज्ञानं मुक्तिः स्थितिः सिद्धिर्गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ दुर्लभोविषयत्यागो दुर्लभन्तत्वदर्शनम्। दुर्लभासहजावस्था सद्गुरोः करुणाम्विना ॥ अर्द्धोन्मीलितलोचनःस्थिरमनाःनासाग्रदत्तेक्षणश्चन्द्रार्कावपि लीनतामुपनयन्निष्पन्दभावेनयः ज्योतीरूपमशेषबीजमखिलन्देदीप्यमानम्परन्तत्वन्तत्पदमेतिवस्तु परमं वाच्यं किमत्राधिकम् ॥ इतिहठयोगे। पातञ्जलियोगग्रन्थेतु सप्तमी भूमिकालक्षणं यथा-प्रलीनानां तेषां न पुनर्बुद्धिरूपेणपरिणामोभविष्यतीत्येवमाकारा सप्तमी भूमिः एवं सप्तप्रकाराऽस्मुभवोयस्य विदुषोजायते तस्य ज्ञाननिष्ठा सद्योमुक्तिर्देति ज्ञातव्या ॥ ३२ ॥

इस तरह छठी भूमि को पार कर वह तपस्वी सातवीं योग भूमि में आया और निश्चल नेत्र से देखता भी था तो कुछ नहीं समझता कि क्या देख रहा है। अपने पूर्ण तपो बल से परब्रह्म रूपी जल में डूब गया अर्थात् पूरा लय भाव के साथ असंप्रज्ञात

समाधिस्थ होगया पूर्ण लय का लक्षण योगशास्त्र में लिखा है कि शरीर के अन्दर मूलाधार स्वाधिष्ठान नाभिचक्र हृदयस्थान कण्ठस्थान भृकुटी और सहस्रदल इन स्थानों में जहां कहीं परब्रह्म के विषय में दृष्टि रहे वहां ही लय हो जाय और पृथिव्यादि पंचभूत तथा आंख कान नाक इत्यादि पांचों कर्मेन्द्रियों के सनातन व्यापार से जो अविद्या है एवं प्राणियों की जो वासनाक्रियां हैं ये सब उस अदृष्ट परमात्मा में लय हो जायं इसको लय कहते हैं। पातंजलि योग सूत्र में भी सप्तमी भूमिका का वर्णन इस तरह किया है कि जहां पर छठी भूमि में सत्वादि का लय हुआ है उसका बुद्धिरूप मे फिर कुछ परिणाम न हो उसको सप्तमी भूमि कहते हैं इस तरह सातों भूमिका का अनुभव जिस विद्वान को हो जाता है उसकी ज्ञाननिष्ठा तत्काल मुक्ति देनेवाली होती है। समाधि के लक्षण योगशास्त्र में लिखे हैं कि जैसे जल में नमक मिलकर एक हो जाता है फिर अलग नहीं हो सकता वैसे आत्मा और परमात्मा की एकता हो तो उसको समाधि कहते हैं। जब प्राण और मन दोनों लय हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा का एकरस होता है उसको समाधि कहते हैं। जब जीवात्मा परमात्मा की एकता होती हैं तब सब संकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं उसको समाधि कहते हैं। हठ योग से केवल प्राण को जीतना होता है और उससे कोई काम नहीं चलत जितने आसन मुद्रा नेति धोती वस्ती कापालक्रिया नौली और विविध प्रकार के प्राणायाम की सिद्धि प्रत्याहार ध्यान धारणा इत्यादि हैं ये सब प्राण जो इड़ा पिंगला नाडी हैं इनको जीतने के लिये है इनके जीतने पर राजयोग आरंभ होता है समाधि के अधिकारी हठयोगी प्राणायामादि साधन द्वारा हो जाता है, परन्तु राजयोग के बिना सब निष्फल है। एक कलाबाजों के खेल के ऐसा है। वह परिश्रम राज योग के द्वारा सफल होता है इसलिये साधक राजयोग का अभ्यास भी साथ

आरंभ करते हैं राजयोग के बिना लयावस्था नहीं होती जीवात्मा
ात्मा की एकता नहीं होती तो भी कोई २ भाग्यवान हठयोग बिना ही
जयोगकी सिद्धि अपने पूर्वपुण्यों के बलसे पालेते हैं जैसे इस ब्राह्मणने तथा
राजयोग का वर्णन योग शास्त्र में किया गया है कि राजयोग के ... ग
यथार्थरूप से कोई नहीं जानता ज्ञान मुक्ति, स्थिति और सिद्धि गुरुवाक्य
प्राप्त जो राजयोग उसी से होती है इस राजयोग के लिये तीन वस्तु
लभ्य हैं एक तो विषय का त्याग करना, दूसरा तत्वों का
र्शन तथा तीसरा सहजावस्था तुरीयावस्था अर्थात् योग की
चतुर्थभूमि, ये तीनों पदार्थ गुरु की कृपा बिना नहीं मिलते,
तुरीयावस्था के बाद निजशक्ति द्वारा भी काम चल जाता है
इस तपस्वी को भी तुरीयावस्था तक आने के लिये सांख्याचार्य
कपिलमुनि को ही ध्यानस्थ गुरु बनाना पड़ा था इति ॥ और समाधिस्थ
योगी का रूप ऐसा होता है। जो योगी परमसमाधिगत होता है उसका
दृष्टि नासिका के आगे १२ अंगुल पर आकाश में स्थिर रहती है
और सूर्य चन्द्र से मतलब इडा पिंगला से है इन दोनों नाडियों के
व्यापार को लय करके निष्पन्द भाव से अर्थात् निश्चल रूप से अपना
सिद्ध किया हुवा आसन से बैठा रहता है ऐसी अवस्था में
जब काष्ठ या पाषाण सदृश स्थिर हो जाता है तब सम्पूर्ण संसार के
आदि बीज पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के ज्योति रूप जो चमकता
हुवा तत्व है उस पद को देखता है वशिष्टजी ने कहा है कि अब इससे
अधिक क्या कह सक्ता हूं जब परम तत्व का दर्शन हो गया तो अब
इसके बाद कुछ बाकी ही नहीं है ॥ २२ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥२३॥

समाधिस्थ होगया पूर्ण लय का लक्षण योगशास्त्र में लिखा है कि शरीर के अन्दर मूलाधार स्वाधिष्ठान नाभिचक्र हृदयस्थान कण्ठ-स्थान भृकुटी और सहस्त्रदल इन स्थानों में जहां कहीं परब्रह्म के विषय में दृष्टि रहे वहां ही लय हो जाय और पृथिव्यादि पंचभूत तथा आंख कान नाक इत्यादि पांचों कर्मेन्द्रियों के सनातन व्यापार से जो अविद्या है एवं प्राणियों की जो वासनायें हैं ये सब उस अदृष्ट परमात्मा में लय हो जायं इसको लय कहते हैं। पातंजलि योग सूत्र में भी सप्तमी भूमिका का वर्णन इस तरह किया है कि जहां पर छटी भूमि में सत्वादि का लय हुवा है उसका बुद्धिरूप से फिर कुछ परिणाम न हो उसको सप्तमी भूमि कहते हैं इस तरह सातों भूमिका का अनुभव जिस विद्वान को हो जाता है उसकी ज्ञाननिष्ठा तत्काल मुक्ति देनेवाली होती है। समाधि के लक्षण योगशास्त्र में लिखे हैं कि जैसे जल में नमक मिलकर एक हो जाता है फिर अलग नहीं हो सकता वैसे आत्मा और परमात्मा की एकता हो तो उसको समाधि कहते हैं। जब प्राण और मन दोनों लय हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा का एकरस होता है उसको समाधि कहते हैं। जब जीवात्मा परमात्मा की एकता होती है तब सब संकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं उसको समाधि कहते हैं। हठ योग से केवल प्राण को जीतना होता है और उससे कोई काम नहीं चलता जितने आसन मुद्रा नेति धौती वस्ती कापालक्रिया नौली और विविध प्रकार के प्राणायाम की सिद्धि प्रत्याहार ध्यान धारणा इत्यादि हैं ये सब प्राण जो इड़ा पिंगला नाडी हैं इनको जीतने के लिये है इनके जीतने पर राजयोग आरंभ होता है समाधि के अधिकारी हठयोगी प्रणायामादि साधन द्वारा हो जाता है, परन्तु राजयोग के बिना सब निष्फल है। एक कलाबाजों के खेल के ऐसा है। वह परिश्रम राज योग के द्वारा सफल होता है इसलिये साधक राजयोग का अभ्यास भी साथ

ही आरंभ करते हैं राजयोग के विना लया वस्था नहीं होती जीवात्मा परमात्मा की एकता नहीं होती तो भी कोई २ भाग्यवान हठयोग विना ही राजयोगकी सिद्धि अपने पूर्वपुरुषों के बलसे पालेते हैं जैसे इस माहात्म्य में गाया है राजयोग का वर्णन योग शास्त्र में किया गया है कि राजयोग के माहात्म्य को यथार्थरूप से कोई नहीं जानता ज्ञान मुक्ति, स्थिति और सिद्धि गुरुवाक्य से प्राप्त जो राजयोग उसी से होती है इस राजयोग के लिये तीन वस्तु अलभ्य हैं एक तो विषय का त्याग करना, दूसरा तत्वों का दर्शन तथा तीसरा सहजावस्था तुरीयावस्था अर्थात् योग की चतुर्थभूमि, ये तीनों पदार्थ गुरु की कृपा बिना नहीं मिलते, तुरीयावस्था के बाद निजशक्ति द्वारा भी काम चल जाता है इस तपस्वी को भी तुरीयावस्था तक आने के लिये सांख्याचार्य कपिलमुनि को ही ध्यानस्थ गुरु बनाना पड़ा था इति ॥ और समाधिस्थ योगी का रूप ऐसा होता है। जो योगी परमसमाधिगत होता है उसकी दृष्टि नासिका के आगे १२ अंगुल पर आकाश में स्थिर रहती है और सूर्य चन्द्र से मतलब इडा पिंगला से है इन दोनों नाड़ियों के व्यापार को लय करके निष्पन्द भाव से अर्थात् निश्चल रूप से अपना सिद्ध किया हुआ आसन से बैठा रहता है ऐसी अवस्था में जब काष्ठ या पाषाण सदृश स्थिर हो जाता है तब सम्पूर्ण संसार के आदि बीज पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के ज्योति रूप जो चमकता हुआ तत्व है उस पद को देखता है वशिष्ठजी ने कहा है कि अब इससे अधिक क्या कह सक्ता हूं जब परम तत्व का दर्शन हो गया तो अब इसके बाद कुछ बाकी ही नहीं है ॥ ३२ ॥

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥३३॥

जो निशा अर्थात् यानिशा अविद्यारूप रात्रि है जिसमें तमाम जगत् सोया हुआ रहता है उसमें इन्द्रिय-निग्रहकारी माहात्मा जागते हैं अर्थात् अविद्या का नाश करके परब्रह्म की चिन्तना करते हैं। और जिसमें सब जगत जागता है उस शब्दादि विषरूप रात्रि में योगिन सोते हैं अर्थात् वह उनकी रात्रि है ॥ ३३ ॥

देहंच नश्वरमवस्थितमुत्थितंवा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथदैववशादपेन-
म्वासोयथा परिधृतं मदिरामदान्धः ॥ ३४ ॥

जो माहात्मा परब्रह्म को साक्षात्कार कर चुके हैं वे यह नाशवान् शरीर रहे या न रहे इसको नहीं देखते। जैसे मदिरा के मद से कोई व्यक्ति अपने पहने हुए वस्त्र को नहीं जानता कि उसके शरीर पर है या नहीं ॥ ३४ ॥

इति संजात विज्ञानं मद्रदेशोद्भवं द्विजम् ॥
दृष्ट्वा मनोनवस्थायाम् संजातः कपिलोमुनिः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार घोर तपस्या से विज्ञान प्राप्त किया हुआ उस मद्रदेशी ब्राह्मण को देख कपिलमुनि के मन की अनवस्था हो गई अर्थात् अब इसके साथ क्या करना चाहिये इस विचार मे चित्त चंचल हो गया ॥ ३५ ॥

स्थानादुत्थाय गच्छन्तं शनैर्मीलितलोचनम् ॥
वत्सं मत्वा: मनुर्भव [illegible] ॥ ३६ ॥

मीलितलोचनं [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] इति ॥ ३६ ॥

नासिकाग्र दृष्टि को किये हुए अपने ध्यान में डटकर धीरे धीरे जाते हुए उस ब्राह्मण को देख भगवान् कपिलजी ने नवप्रसूता गौ जैसे अपने बच्चे के पीछे पीछे चलती है वैसे पीछे २ चलने लगे॥३६

**निम्नोन्नतप्रदेशेषु गच्छन्तं तं यदृच्छया ॥**
**धावं धावं द्विजस्याग्रे स समं देशमानयत् ॥ ३७ ॥**

जब अपनी इच्छा से परिभ्रमण करता हुआ वह ब्राह्मण कहीं नीचे गड्ढे की तरफ जा पड़ता था या कहीं ऊंची जगह पर चढ़ने लगता था तो उसके आगे दौड़ दौड़ कर उसका हाथ पकड़ बराबर जमीन पर लातेथे क्योंकि अपने ध्यान में निमग्न वह ब्राह्मण आगे कुआ हो या पहाड सीधाही चलता था और आंखें ईश्वर को ही देखने में लगी रहती थी उससे संसारी काम तो लेता था ही नहीं इसलिये भक्तवत्सल भगवान् को उसे संभालना पडता था ॥ ३७ ॥

**भुञ्जानं क्वापि तं विप्रं सदा मीलितलोचनम् ॥**
**मक्षिकारक्षणं कुर्वन् भोजयामास भृत्यवत् ॥ ३८ ॥**

भगवान् भक्तों के खरीदे हुए दास हैं जो ईश्वर के सच्चे दास बनजाते हैं वे वास्तव में ईश्वर बनते हैं दास तो ईश्वर को ही बनना पड़ता है अब यहां ही देखिये जब कभी वह ब्राह्मण आंखों को बन्द किये हुवे भोजन करने बैठता था तो भगवान् दासों की तरह उसकी थाली से मक्खियों को हटाते हुए भोजन कराते थे ॥ ३८ ॥

**पानीयं पिबतः क्वापि तन्निष्ठं यत्तृणादिकम् ॥**
**प्रहृत्य दूरीकुरुते हरिः स्वद्वत्सलः स्वयम् ॥ ३९ ॥**

कभी पानी पीने लगता था तो जलपात्र में कोई घास फूस पड़ जाता था उसको निकालकर दूर करते थे क्योंकि भगवान्

भक्तवत्सल हैं और जिसकी इतनी सावधानी से सेवा कर रहे हैं वह जानता भी नहीं कि मेरे सामने कौन है ? क्योंकि उसकी आंखें तो वन्द होकर और ही कुछ देखरही हैं इतना अवकाश कहां कि इनको पहचाने। हजार सेवा करते रहें वह अपने ध्यान में मग्न समझता क्या है ? वेतन तो पहले ही चुका दिया है ॥ ३९ ॥

कदाचित्तिष्ठतिकापि समुनिः स्वस्थमानसः ॥
परमात्मारमाकान्तस्तदा विश्रमते मनाक् ॥ ४० ॥

जब वह मुनि कभी किसी जगह परमात्मा का ध्यान करताहुआ स्वस्थ होकर बैठता था तो भगवान् रमाकान्त भी थोड़ा विश्राम करलेते थे नौकरी साधारण नहीं थी दिनरात पहरा देना था नौकरी एकही थी अगर ऐसे ही दो चार भगवान् और होते तो कुछ घण्टों की नौकरी करने के बाद विश्राम होता ऐसा विप्र और नौकर मिलना कठिन था ॥ ४० ॥

एवं वृतः सविप्राग्र्यो निर्ममोनिरहं कृतिः ॥
ब्रह्मभूतः स्वतः काले संजहौ स्वकलेवरम् ॥ ४१ ॥

अब भगवान् को कुछ दिन के लिये अवकाश मिला क्योंकि इस तरह अपने व्रत को करता हुआ निर्मत्सर और निरहंकारी उस द्विज-श्रेष्ठ ब्रह्म ने ध्यान करते करते स्वयं परब्रह्म होकर काल-प्राप्ति पर अपने शरीर को त्याग कर दिया ॥ ४१ ॥

नामरूपे विहायेह यथा यात्यब्धितां नदी ॥
नामरूपे विहायासौ तथात्मानः परात्मताम् ॥ ४२ ॥

जैसे नदी अपना नाम रूप छोड़ समुद्र में मिलकर समु-द्र होजाती है वैसे यह ब्राह्मण भी अपना नाम रूप छोड़कर परमात्म-मय हुआ अर्थात् उसको ब्रह्म सायुज्य हो गया ॥ ४२ ॥

तद्देहं श्वगृगालाद्या भक्ष्यामा सुरोजसः ॥
ते प्रापुरुत्तमं जन्म विमुक्ताः पापयोनितः ॥ ४३ ॥

उसके मृत देह को कुत्ते शृगाल गृध्र काकादि नर मांसभक्षी जानवर खा गये और इस पवित्र मांस को खाने से वे भी पापयोनि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पा गये ॥ ४३ ॥

विमानयानस्तच्छन् गोकर्णशिवदर्शने ॥
उल्ललङ्घतदस्थीनि कदाचिदलकापतिः ॥ ४४ ॥

उस ब्राह्मण के देहावसानानन्तर किसी समय अलकापति कुबेर अपने पुष्पकविमान पर बैठे हुए गोकर्णनाथ महादेव का दर्शन करने को आकाशमार्ग से जा रहे थे सो मार्ग में उस ब्राह्मण के देह की हड्डियां पड़ी थीं उसको उल्लंघन करदिया ॥ ४४ ॥

सविमानः पपाताशु पृथिव्यां नरवाहनः ॥
तदस्थिलंघनोद्भूतदोषादुत्तमदैवतम् ॥ ४५ ॥

कुबेर का वाहन पालकी भी है जिसको नरवाहन कहते हैं इसलिये यह विशेषण कुबेर का है। नरवाहन कुबेर उस अस्थि को लंघन करने के दोष से विमानसहित उसी समय पृथ्वी पर गिरगये क्योंकि वह अस्थि उत्तम दैवत थी अर्थात् एक परमतपस्वी की थीं ॥ ४५ ॥

पतितश्चिन्तयामास तदापतनकारणम् ॥
पतनं येन संजातं तत्स्वपतनादयुद्धवान् ॥ ॥ ४६ ॥

जब कुबेर विमान के साथ जमीन पर आगये तो अपने गिरने का कारण सोचने लगे परन्तु जिस कारण से गिरे थे सो नहीं जान सके ॥ ४६ ॥

ततः प्रादुरभूदग्रे नभस्वान् भगवानसौ ॥
सर्वगः सर्वभूतात्मा तस्य शङ्का पनुत्तये ॥ ४७ ॥

जब कुबेर स्वयं अपने गिरने का कारण न समझ सके तो उनको उलझन में फंसा हुवा देख सर्वत्र जानेवाले जन्तु मात्र के आत्मा रूप भगवान पवनदेव कुबेर के आगे उनकी शंका को निवृत करने के लिये आकर उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥

नभस्वान्वदति ॥ राजराज ! महाराज ! मनः शङ्कामपा कुरु ॥ एतान्यस्थीनि दृश्यन्ते भवत्पतन हेतवे ॥४८॥

वायुदेव बोले कि हे राजों के राजा महाराज कुबेर ! आप अपने मन की शंका को हटाइये आपके पतन का हेतु ये हड्डियां हैं ॥४८॥

इमान्यादाय शीघ्रं त्वं कापिलीये सरोवरे ॥
प्रक्षिप्य पुनरेवाग्रे स्वांगतिं समवाप्स्यसि ॥ ४९ ॥

इन हड्डियों को लेकर शीघ्र कपिल सरोवर में डालिये तब आगे अपनी राह लीजिये ॥ ४९ ॥

इत्युक्तस्त्र्यम्बकसखो वायुना जगदायुना ॥
तथा चक्रे महाभाग ! ततः स्वांगतिमास्थितः ॥५०॥

हे महाभाग अगस्त्य ! आमलयांत आयु है जिनकी ऐसे वायु देव ने जब भगवान् शिव के मित्र कुबेर से ऐसा कहा तो कुबेर ने वायुदेव के कथनानुसार ही किया, तब अपनी यात्रा को आरंभ किए अर्थात् उन हड्डियों को सरोवर में डालकर तब गोकर्णनाथ के यहां गये। यह तप का प्रभाव है कि जीते जी स्वयं भगवान ने उन ब्राह्मण की सेवा की, मरने पर कुबेर सदृश देवताने उनकी हड्डियों को

सरोवर में डाला। और मांस खानेवाले जानवरों ने अपनी पापयोनि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पाया ॥ ५० ॥

**गत्वा गोकर्णनिकटं दृष्ट्वा तच्चरणद्वयम् ॥**
**सर्वं वृत्तांतजातं स शंभुं पप्रच्छ विस्मयात् ॥ ५१ ॥**

कुबेर ने गोकर्णनाथ के निकट जा उनके चरणों को वन्दना कर रास्ते की सब कथा आश्चर्य के साथ भगवान् शंकरजी से कही और इसका कारण पूछा ॥ ५१ ॥

**शंभु स्तस्मै यथावृत्तं कथयामास विस्तरात् ॥**
**सोपि श्रुत्वा मुदा युक्तश्चाययौ स्वालयं पुनः ॥ ५२ ॥**

भगवान् शुंभदेव ने उस तीर्थ की और तपस्वी ब्राह्मण की सब कथा कह सुनाई सुनकर बड़े हर्ष के साथ अलकाधिपति अपने भवन को आये ॥ ५२ ॥

**आगच्छत् स्वगृहं देवः सस्नौ तस्मिन्सरोवरे ॥**
**स्नात मात्रस्य तथाशु कुष्टं नष्टमभूत्क्षणात् ॥ ५३ ॥**

कुबेरदेव ने भी अपने घर को आते हुवे उस सरोवर में स्नान किया और स्नान करने के साथ ही बहुत दिनों से उनके शरीर में लगी हुई कुष्टव्याधि थी सो नष्ट हो गई और दिव्य देह हो गया ॥ ५३ ॥

**इयं पंचेतिहासी मे पंचाननमुखाच्छ्रुता ॥**
**प्रीत्यर्थं कथिता तुभ्यं स्वर्षाद्यैः पंचभिर्मुखैः ॥ ५४ ॥**

ये पांच इतिहास से संयुक्त कथा मैं ने अपने पिता पंचानन शिवजी के पांचों मुखों से सुनी थी सो तुम्हारी प्रीति के कारण तुमसे कही है ॥ ५४ ॥

यां श्रुत्वा श्रद्धया धीरो नरोयाति कृतार्थताम् ॥
किंपुनः सेवमानः सन् सदासिद्धः सरोवरः ॥ ५५ ॥

जिस कथा को बुद्धिमान मनुष्य श्रद्धापूर्वक सुनकर ही कृतार्थ होजाते हैं उस सिद्ध सरोवर का यदि सदा सेवन किया जाय तो फिर क्या? अर्थात् सब मनोरथ सफल होजायं ॥ ५५ ॥

अत्रयद्दीयते मर्त्यैः स्वल्पंतन्मेरुताम्व्रजेत् ॥
अत्र यत्क्रियते किञ्चित्तदक्षयफलंभवेत् ॥ ५६ ॥

भगवान् स्कन्ददेव की कथा अगस्त्य ऋषि के प्रति समाप्त हुई। अब सूतजी शौनकादिकों से ग्रन्थोपसंहार में कहते हैं कि इस तीर्थ में रेणु तुल्य भी दान किया जाय तो मेरु के समान होता है और यहां जो तपस्यादि किये जाते हैं उनके अक्षय फल होते हैं ॥ ५६ ॥

कृत्वाताम्रतुलामत्र दद्याद्रत्नतुलाफलम् ॥
अत्र समान्यधेनोर्यद्दानं प्रकुरुते सुधीः ॥ ५७ ॥
फलंतूभयतोमुख्यास्तस्यस्या दाशुनिश्चितम् ॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजितः ॥ ५८ ॥

इस तीर्थ में यदि ताम्रतुला का दान किया जाय तो रत्न के तुलादान का फल हो और यदि साधारण गौदान करे तो उभय मुखी गौदान करने का फल निश्चयपूर्वक और तत्काल ही मिले। तथा इस तीर्थ में एक ब्राह्मण को भोजन कराया जाय तो कोटि ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल होता है ॥ ५७, ५८ ॥

एवं सर्वमपि स्वल्पं भूरी भवति भेदतः ॥
यस्ययस्येह देवस्य प्रासादं कारयेत्सुधीः ॥ ५९ ॥
तस्य तस्यैव देवस्य समानत्वं समाप्नुयात् ॥

इसी प्रकार सभी दान व्रत आदि थोड़ा भी यहां किया जाय तो तीर्थ के प्रबल माहात्म्य के वश बहुत होजाते हैं और विचारवान् मनुष्य यहां पर जिस जिस देवता के मन्दिर बनवाते हैं वह उसी उसी देवता की समानता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

**शिलाभिः सेतुबन्धं यः कारयेद्धनवान्नरः ॥**
**तत्तीर्थतुल्यमाहात्म्योजायते सध्रुवंभुवि ॥ ६० ॥**

जो धनी पुरुष इस तीर्थ में प्रस्तर के शिलाओं से सेतु बन्धावे और सरोवर में सुख से स्नान करने वास्ते घाट बनवावे वह पृथ्वी में निश्चय रूप से तीर्थ के बराबर पूज्य हो जाता है ॥ ६० ॥

**इति ते सर्वमाख्यातं मया शौनक पावनम् ॥**
**तीर्थ रत्नस्य माहात्म्यं यतोनास्तिवरंपरम् ॥ ६१ ॥**

हे शौनक ! यह पवित्र तीर्थमाहात्म्य मैंने तुझ से कहा है। इसके उपरान्त इससे श्रेष्ठ और किसी तीर्थ के माहात्म्य नहीं है ॥६१॥

**इति कार्तिककापिलेययोर्महिमानं महनीयभाषितम्॥**
**प्रदहेदिह पातकं क्षणाच्छृणुते श्रावयतेच भक्तितः ॥६२**

यह कार्तिक मास और कापिलेय तीर्थ की महिमा पूज्य जनों की कही हुई है जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है और सुनाता है वह क्षण मात्र में अपने पातकों को जला देता है ॥ ६२ ॥

इति ॥